SUPREME AUDIT INSTITUTION OF INDIA
लोकहितार्थ सत्यनिष्ठा
Dedicated to Truth in Public Interest

# गोपाद्री

33वां अंक : 2025-26

## महालेखाकार (लेखापरीक्षा-प्रथम) का कार्यालय
## मध्य प्रदेश, ग्वालियर

प्रधान महालेखाकार (लेखापरीक्षा
ध्य प्रदेश, ग्वालियर
प्रधान महालेखाकार (लेखापरीक्षा–द्वितीय)
भोपाल, शाखा
महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी) प्रथम
प्रदेश
(केन्द्रीय
शाखा
जित
5 तक

SUPREME AUDIT INSTITUTION OF INDIA
लोकहितार्थ सत्यनिष्ठा
Dedicated to Truth in Public Interest

# गोपाद्री


अर्द्धवार्षिक : 33वां अंक
2025-26



संरक्षक

**सिद्धार्थ बोंदाडे**
महालेखाकार

◆◆◆

उप संरक्षक

**महेश प्रसाद श्रीवास्तव**
उप महालेखाकार (प्रशासन)

◆◆◆

**संपादक मण्डल**

**मनीष कुमार**
सहायक निदेशक (राजभाषा)

**प्रवीण कुमार श्रीवास्तव**
सहायक लेखापरीक्षा अधिकारी

**निधि गौतम**
कनिष्ठ हिंदी अनुवादक

**स्वेता रविदास**
कनिष्ठ हिंदी अनुवादक



पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं, उनसे कार्यालय अथवा संपादक मंडल की सहमति आवश्यक नहीं है।



अपनी प्रतिक्रिया एवं सुझाव सहायक निदेशक (राजभाषा), महालेखाकार (लेखापरीक्षा-प्रथम), का कार्यालय
मध्य प्रदेश, ऑडिट भवन, झाँसी रोड, ग्वालियर - 474002 को भेजें।

# अनुक्रमणिका


| क्र. | रचना/लेख | रचनाकार/लेखक | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| 1. | संदेश | - | |
| 2. | संव्यवहारों की लेखापरीक्षा | धनंजय कुमार | 01 |
| 3. | हिंदी : एक भाषा नहीं, एक अनुभव | निधि गौतम | 05 |
| 4. | पीला सेमल | सारिका शर्मा | 07 |
| 5. | कृतज्ञता एक नैतिक क्षमता, भावुकता नहीं | आलोक कुमार | 09 |
| 6. | एक किश्त | चंद्रपाल सिंह यादव | 11 |
| 7. | भारतीय महिलाओं की शिक्षाः महत्व और संवैधानिक सशक्तिकरण | पुष्पांजलि विश्वकर्मा | 12 |
| 8. | फाइलों के पार : लेखापरीक्षा में पर्यावरण, नैतिकता और सेवा | आशीष कुमार विश्वकर्मा | 16 |
| 9. | गहनों से परे माँ | आनंद कुमार झा | 20 |
| 10. | मेरी पहली कमाई | अवनी जैन | 23 |
| 11. | टीम वर्क : सफलता की कुंजी | प्रवीण कुमार श्रीवास्तव | 25 |
| 12. | दिल तो बच्चा है जी! | अर्चना मानव | 28 |
| 13. | दफ्तर के पाँच मौन शिक्षक | सेहरिश फुज़ैल | 32 |
| 14. | चलो, शब्द नहीं चुप्पी सुनी जाए | स्वेता रविदास | 35 |
| 15. | दो साँसों की कहानी | शिखा मलिक | 37 |
| 16. | जीवन चक्र | अनन्य गुप्ता | 40 |
| 17. | सादगी भरा जीवन ही सच्चा सुख | शिवसिंह यादव | 42 |
| 18. | जादुई क्रेडिट कार्ड | सृष्टि सिंह | 45 |
| 19. | बहार की आई बहार | गौरव सिंह कुशवाह | 48 |
| 20. | चाय के कप पर संवादः जेन जी और भारतीय प्रशासन | तनुज कुमार | 49 |
| 21. | अर्थहीन ब्रह्माण्डः भाग एक - शून्य में अभिनय | अभिषेक रावत | 53 |
| 22. | कार्यालयीन गतिविधियाँ | | 56 |
| 23. | कार्यालय में नियुक्त/सेवानिवृत्त/मृत कार्मिकों की सूची | | 57 |

SUPREME AUDIT INSTITUTION OF INDIA
लोकहितार्थ सत्यनिष्ठा
Dedicated to Truth in Public Interest

# संदेश

प्रिय सहकर्मियों,

यह अत्यंत प्रसन्नता का विषय है कि हमारे कार्यालय की राजभाषा हिंदी पत्रिका का 33वां अंक आपके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। हिंदी न केवल हमारी राजभाषा है, बल्कि यह देश की सांस्कृतिक एकता, संवेदनशीलता और संवाद की सशक्त अभिव्यक्ति भी है।

यह पत्रिका केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि कार्यालयीन कार्यों में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने की हमारी प्रतिबद्धता का प्रतीक है। प्रस्तुत पत्रिका हमारे अधिकारियों और कर्मचारियों की सृजनात्मक प्रतिभा का प्रतिबिंब है। इसमें संकलित लेख, कविताएँ और संस्मरण न केवल ज्ञानवर्धक हैं, बल्कि राजभाषा के प्रति हमारे बढ़ते रुझान को भी दर्शाते हैं। मुझे विश्वास है कि यह अंक ज्ञानवर्धक, प्रेरणादायक और उपयोगी सिद्ध होगा।

पत्रिका के संपादक मंडल को इस उत्कृष्ट प्रयास के लिए हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ।

**जय हिंद, जय हिंदी !**

**(सिद्धार्थ बोंदाडे)**
**महालेखाकार (लेखापरीक्षा प्रथम)**

SUPREME AUDIT INSTITUTION OF INDIA
लोकहितार्थ सत्यनिष्ठा
Dedicated to Truth in Public Interest

# संदेश

हमारे कार्यालय की राजभाषा हिंदी पत्रिका के नवीन अंक के प्रकाशन पर मुझे अपार हर्ष हो रहा है। यह पत्रिका केवल रचनाओं का संकलन नहीं, बल्कि हमारे सामूहिक विचार, अनुभव और कार्य संस्कृति का दर्पण है।

हिंदी हमारे प्रशासनिक तंत्र की आत्मा है, जिसे भारतीय संविधान में संघ की राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। हम सबका यह दायित्व है कि हिंदी को अपने दैनिक कार्यालयीन कार्यों में स्वाभाविक रूप से अपनाएँ। जब भाषा सहज होती है, तो संवाद प्रभावी होता है और कार्य निष्पादन में गति आती है। यह पत्रिका इसी दिशा में एक प्रेरक पहल है, जो न केवल लेखन प्रतिभा को मंच देती है, बल्कि राजभाषा के प्रति जागरूकता भी बढ़ाती है।

मैं सभी सहयोगियों से अपेक्षा करता हूँ कि वे इस पत्रिका को और समृद्ध बनाने हेतु सक्रिय सहभागिता करें तथा हिंदी के प्रयोग को अपने कार्य–व्यवहार का अभिन्न अंग बनाएँ।

संपादकीय मंडल एवं सभी सहयोगियों को इस उत्कृष्ट प्रयास के लिए हार्दिक बधाई।

**जय हिंद, जय हिंदी।**

**(महेश प्रसाद श्रीवास्तव)**
**उप महालेखाकार**
**प्रशासन**

SUPREME AUDIT INSTITUTION OF INDIA
लोकहितार्थ सत्यनिष्ठा
Dedicated to Truth in Public Interest

# संदेश

यह अत्यंत गौरव का विषय है कि हमारी राजभाषा पत्रिका ''गोपाद्री'' का नवीन अंक प्रकाशित हो रहा है। किसी भी प्रगतिशील संगठन की जीवंतता उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और भाषाई गौरव में निहित होती है। 'गोपाद्री' हमारे संस्थान की उसी सामूहिक चेतना और सृजनात्मकता का दर्पण है।

आज के प्रतिस्पर्धी युग में, जहाँ तकनीक प्रधान है, अपनी मातृभाषा और राजभाषा हिंदी में मौलिक चिंतन करना हमें अपनी जड़ों से जोड़े रखता है। यह पत्रिका न केवल आधिकारिक कार्यों में हिंदी के बढ़ते प्रयोग को दर्शाती है, बल्कि हमारे सहयोगियों की साहित्यिक अभिरुचि और नवाचारी विचारों को भी एक साझा मंच प्रदान करती है।

मेरा विश्वास है कि इस अंक में संकलित लेख और रचनाएँ पाठकों के बीच नई ऊर्जा का संचार करेंगी और राजभाषा के प्रति हमारे संकल्प को और सुदृढ़ बनाएँगी। इस सार्थक प्रयास के लिए मैं संपादन टीम और सभी योगदानकर्ताओं को हार्दिक बधाई देता हूँ।

गोपाद्री के उज्ज्वल भविष्य हेतु मंगलकामनाएँ!

यशवन्त

**(यशवंत कुमार)**

**उप महालेखाकार**
**ए.एम.जी.-4**

SUPREME AUDIT INSTITUTION OF INDIA
लोकहितार्थ सत्यनिष्ठा
Dedicated to Truth in Public Interest

# संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि हमारी राजभाषा पत्रिका 'गोपाद्री' का नवीनतम अंक प्रकाशित होने जा रहा है। किसी भी ऊर्जावान संस्थान की पहचान उसके कार्मिकों की कार्यक्षमता के साथ–साथ उनकी रचनात्मकता से भी होती है।

'गोपाद्री' केवल एक पत्रिका नहीं, बल्कि हमारे विचारों के आदान–प्रदान का एक सशक्त मंच है।

राजभाषा हिंदी न केवल हमारी सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है, बल्कि यह हमारे प्रशासनिक कार्यों में सरलता और पारदर्शिता लाने का एक प्रभावी माध्यम भी है। मुझे विश्वास है कि यह अंक संस्थान की उपलब्धियों को रेखांकित करने के साथ–साथ सहकर्मियों के साहित्यिक सृजन को भी उचित स्थान प्रदान करेगा।

मैं इस पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए संपादक मंडल और सभी लेखकों को हार्दिक बधाई देता हूँ। आशा है कि यह अंक पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक और प्रेरणादायी सिद्ध होगा।

पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति हेतु शुभकामनाएँ।

**(हरजिन्द्र कुमार)**
**उप महालेखाकार**
**ए.एम.जी.-3**

SUPREME AUDIT INSTITUTION OF INDIA
लोकहितार्थ सत्यनिष्ठा
Dedicated to Truth in Public Interest

# संपादकीय

हमारी राजभाषा हिंदी पत्रिका 'गोपाद्री' का यह 33वां अंक हमारे कार्यालय की रचनात्मक ऊर्जा, भाषाई प्रतिबद्धता और सामूहिक सहभागिता का साकार रूप है। यह केवल लेखों, कविताओं और विचारों का संग्रह नहीं, बल्कि हिंदी के प्रति हमारे सम्मान, विश्वास और निरंतर प्रयासों का दर्पण है। यह पत्रिका उन सभी प्रयासों को एक मंच प्रदान करती है, जहाँ प्रत्येक अधिकारी और कर्मचारी अपनी सृजनात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से योगदान दे सकता है।

इस अंक में लेखापरीक्षा एवं अन्य विषयों पर लेख, समसामयिक विचार, साहित्यिक रचनाएँ तथा अनुभव साझा किए गए हैं, जो न केवल ज्ञानवर्धक बल्कि प्रेरणादायक भी हैं। हमें विश्वास है कि यह अंक पाठकों को हिंदी के प्रयोग के प्रति और अधिक प्रेरित करेगा।

हम सभी सहयोगियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं, जिनके योगदान से यह अंक संभव हो सका। साथ ही, आप सभी से अनुरोध है कि आगामी अंकों को और बेहतर बनाने के लिए अपने सुझाव एवं प्रतिक्रियाएँ अवश्य प्रेषित करें। आपकी सक्रिय सहभागिता ही इस पत्रिका की वास्तविक शक्ति है।

आइए, हम सब मिलकर राजभाषा हिंदी को अपने कार्य और व्यवहार का स्वाभाविक माध्यम बनाएँ।

**जय हिंद, जय हिंदी।**

**(मनीष कुमार)**
**सहायक निदेशक**

# संव्यवहारों की लेखापरीक्षा

**धनंजय कुमार**
वरिष्ठ लेखापरीक्षा अधिकारी

## लेखापरीक्षा की आयोजना

किसी भी इकाई की लेखापरीक्षा से पूर्व समुचित आयोजना की जाती है। इसके अंतर्गत लेखापरीक्षा कार्यालय के योजना (प्लानिंग) अनुभाग द्वारा आगामी वर्ष में लेखापरीक्षा हेतु चयनित की जाने वाली इकाइयों की वार्षिक योजना तैयार की जाती है। यह योजना उपलब्ध मानव संसाधन, इकाइयों के जोखिम स्तर तथा अन्य प्रासंगिक मानकों के आधार पर बनाई जाती है तथा सक्षम प्राधिकारी से अनुमोदन प्राप्त किया जाता है।

अनुमोदन के पश्चात तिमाही आधार पर लेखापरीक्षा कार्यक्रम तैयार किया जाता है। सामान्यतः लेखापरीक्षा दल में चार सदस्य होते हैं, जिनमें वरिष्ठ लेखापरीक्षा अधिकारी स्तर का अधिकारी दल का नेतृत्व करता है। दल में दो सहायक लेखापरीक्षा अधिकारी एवं एक लेखापरीक्षक संवर्ग का कर्मचारी शामिल होता है।

योजना अनुभाग द्वारा संबंधित दल को दौरा कार्यक्रम उपलब्ध कराया जाता है, जिसमें तिमाही के दौरान लेखापरीक्षा हेतु चयनित इकाइयों के नाम, लेखापरीक्षा अवधि तथा तिथियों का स्पष्ट विवरण रहता है। साथ ही, संबंधित इकाइयों के कार्यालय प्रमुख को लेखापरीक्षा सूचना जारी कर लेखापरीक्षा कार्यक्रम एवं दल के विवरण से अवगत कराया जाता है तथा आवश्यक अभिलेख एवं जानकारी उपलब्ध कराने का अनुरोध किया जाता है।

### प्रारंभिक बैठक एवं प्रारंभिक ज्ञापन

लेखापरीक्षा दल द्वारा इकाई पर पहुँचने के उपरांत सर्वप्रथम कार्यालय प्रमुख से भेंट कर अपना परिचय दिया जाता है तथा प्रारंभिक बैठक आयोजित की जाती है। इस बैठक में लेखापरीक्षा हेतु वांछित अभिलेखों एवं सूचनाओं की उपलब्धता, लेखापरीक्षा अवधि के दौरान समन्वय हेतु नोडल अधिकारी का नामांकन, बैठक कक्ष एवं आवश्यक मूलभूत सुविधाओं की व्यवस्था के संबंध में अनुरोध किया जाता है। प्रारंभिक बैठक में हुई चर्चा के आधार पर कार्यवृत्त तैयार किया जाता है, जिसे कार्यालय प्रमुख एवं लेखापरीक्षा दल प्रमुख के हस्ताक्षर से जारी किया जाता है।

इकाई के संबंध में प्रारंभिक जानकारी प्राप्त करने हेतु लेखापरीक्षा दल द्वारा प्रारंभिक ज्ञापन जारी किए जाते हैं, जिनके माध्यम से कार्यालय का संक्षिप्त विवरण, कार्यालय प्रमुख एवं आहरण एवं संवितरण अधिकारी का कार्यकाल, आंतरिक लेखापरीक्षा का विवरण, आय–व्यय का विवरण, कोषालय एवं बैंक खातों की जानकारी, रोकड़ बही आदि से संबंधित सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं।

इसके अतिरिक्त कार्यालय के मानव संसाधन, सेवा पुस्तिकाएँ, भविष्य निधि अभिलेख, क्रय एवं भंडार से संबंधित दस्तावेज, देयकों की प्रतियाँ, लंबित भुगतान की स्थिति, रोकड़ बही, समस्त आय–व्यय प्रमाणक, भंडार एवं निर्गम पंजियाँ, भवन एवं संपत्तियों का विवरण, वाहन एवं अन्य अचल संपत्तियाँ, संचालित योजनाओं की वित्तीय एवं भौतिक प्रगति तथा पूर्व लेखापरीक्षा की लंबित कंडिकाओं की स्थिति से संबंधित अभिलेख प्राप्त किए जाते हैं।

### लेखापरीक्षा कार्य का निष्पादन

लेखापरीक्षा दल द्वारा इकाई पर कार्य निष्पादन हेतु दल सदस्यों के मध्य कार्यों का वितरण किया जाता है तथा विस्तृत लेखापरीक्षा के लिए माह का चयन किया जाता है। चयनित माह में समस्त वित्तीय लेन–देन की शत–प्रतिशत लेखापरीक्षा की जाती है। आवश्यकता पड़ने पर कोषालय अथवा बैंक से जानकारी प्राप्त कर उसका मिलान भी किया जाता है।

कार्यालय द्वारा वांछित अभिलेख उपलब्ध कराए जाने पर दल के सदस्य अपने–अपने निर्धारित कार्यों का निष्पादन करते हैं तथा आवश्यकता होने पर अतिरिक्त जानकारी/अभिलेख ज्ञापन के माध्यम से मांगे जाते हैं। अभिलेखों की संवीक्षा के उपरांत लेखापरीक्षा दल द्वारा पाई गई कमियों/आपत्तियों को इंगित करते हुए लेखापरीक्षा टिप्पणी ज्ञापन जारी किया जाता है। कार्यालय प्रमुख द्वारा इन आपत्ति ज्ञापनों का शीघ्र उत्तर प्रस्तुत किया जाना आवश्यक होता है, जिससे निर्धारित समयावधि में लेखापरीक्षा कार्य पूर्ण किया जा सके। आपत्ति ज्ञापन जारी करने से पूर्व संबंधित सभी मूल साक्ष्यों की फोटोकॉपी/स्कैन प्रति सुरक्षित रखी जाती है तथा निरीक्षण प्रतिवेदन में शामिल करते समय आपत्ति के साथ सभी दस्तावेज/अभिलेख संलग्न किए जाते हैं।

### आय एवं व्यय की लेखापरीक्षा

लेखापरीक्षा अवधि में इकाई को समस्त स्रोतों से प्राप्त आय, जैसे कोषालय से आहरित राशि, बैंक खाते में

प्राप्त राशि तथा अन्य माध्यमों से प्राप्त आय की जाँच की जाती है। यह सुनिश्चित किया जाता है कि समस्त आय कार्यालय की मुख्य रोकड़ बही के प्राप्ति पक्ष में विधिवत अंकित की गई हो। नमूना जाँच हेतु चयनित माहों में शत–प्रतिशत जाँच की जाती है।

व्यय की लेखापरीक्षा के दौरान यह देखा जाता है कि समस्त व्यय रोकड़ बही के व्यय पक्ष में अंकित है तथा मुख्य एवं सहायक प्रमाणकों का मूल अभिलेखों से मिलान किया गया है। यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि व्यय उसी उद्देश्य के लिए किया गया है जिसके लिए राशि प्राप्त हुई थी, सक्षम अधिकारी से अनुमोदन प्राप्त किया गया है तथा भुगतान के पश्चात प्रमाणकों पर "भुगतान किया गया" की मुहर लगाई गई है, जिससे दोबारा भुगतान की संभावना समाप्त हो सके।

**स्थापना संबंधी अभिलेखों की लेखापरीक्षा**

स्थापना लेखापरीक्षा में कार्यालय के मानव संसाधन एवं संबंधित अभिलेखों की जाँच की जाती है। इसमें यह देखा जाता है कि स्वीकृत पदों के विरुद्ध ही कार्मिक कार्यरत हैं, उनकी सेवा पुस्तिकाएँ कार्यालय में संधारित हैं तथा सेवा पुस्तिकाओं में काँट–छाँट से बचाव हेतु समुचित उपाय किए गए हैं। वार्षिक वेतनवृद्धि, वेतन निर्धारण, अवकाश खाते एवं सेवा काल के समस्त घटनाक्रमों की प्रविष्टियाँ सेवा पुस्तिकाओं में विधिवत दर्ज हैं या नहीं, इसकी जाँच की जाती है।

कार्मिकों के भविष्य निधि खातों के संधारण, वार्षिक ब्याज की गणना एवं खाते में समायोजन, महालेखाकार को वार्षिक विवरण प्रेषण, अग्रिम/आंशिक/अंतिम भुगतान के दौरान कटौतियों एवं आहरणों की जाँच तथा विलंब से भुगतान की स्थिति में ब्याज भुगतान की जाँच की जाती है।

**क्रय एवं भंडार की लेखापरीक्षा**

कार्यालय संचालन हेतु किए गए क्रय एवं भंडार की जाँच संबंधित सरकारी/विभागीय भंडार एवं क्रय नियमों के अनुसार की जाती है। जहाँ आवश्यक है, वहाँ निविदा प्रक्रिया का अनुपालन किया गया है तथा संबंधित फर्म को क्रय आदेश जारी किए गए हैं। यह सुनिश्चित किया जाता है कि निविदाकारों से नियमानुसार प्रतिभूति राशि ली गई है, प्राप्त सामग्रियों की प्रविष्टि क्रय पंजियों में की गई है, उनका भौतिक सत्यापन किया गया है तथा वितरण माँग पत्र के आधार पर कर पावती प्राप्त की गई है। कार्यालय की समस्त संपत्तियों एवं सामग्रियों का भौतिक सत्यापन कर उसका प्रमाण भंडार पंजियों में अंकित है या नहीं, इसकी जाँच की जाती है। पूर्व वित्तीय वर्ष के क्रय देयकों का भुगतान वर्तमान वर्ष के बजट पर भारित न किया गया हो, यह भी सुनिश्चित किया जाता है।

**योजनाओं की लेखापरीक्षा**

कार्यालय में संचालित केंद्रीय, राज्य एवं अन्य योजनाओं के अंतर्गत आवंटित बजट के अनुरूप व्यय की जाँच की जाती है। यह सुनिश्चित किया जाता है कि एक योजना की राशि का उपयोग अन्य योजना में न किया गया हो। योजना व्यय का वर्ष भर में समान वितरण अथवा वित्तीय वर्ष के अंत में अत्यधिक व्यय की प्रवृत्ति की समीक्षा की जाती है। हितग्राही मूलक योजनाओं में हितग्राहियों के चयन की प्रक्रिया, लक्षित लाभार्थियों को समय पर लाभ प्राप्त होना, निर्माण कार्यों का समयबद्ध पूर्ण होना, कार्य निष्पादन एजेंसी (सरकारी/निजी), कार्य पूर्णता प्रमाण पत्र की उपलब्धता तथा निर्मित संपत्तियों का कार्यालय को हस्तांतरण आदि की जाँच की जाती है।

इस प्रकार लेखापरीक्षा अवधि के दौरान कार्यालय की समस्त वित्तीय एवं भौतिक गतिविधियों की लेखापरीक्षा भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक द्वारा जारी चेकलिस्ट के आधार पर की जाती है। लेखापरीक्षा कार्यालय द्वारा विभागवार चेकलिस्ट तैयार कर उसका पालन सुनिश्चित किया जाता है। पाई गई कमियों/अनियमितताओं पर आपत्ति ज्ञापन जारी कर इकाई प्रमुख से अभिमत प्राप्त किया जाता है।

कार्यालय द्वारा आपत्ति ज्ञापनों का उत्तर प्राप्त होने पर दल प्रमुख द्वारा परीक्षण कर अभ्युक्ति सहित आद्याक्षर किए जाते हैं। आपत्तियों को प्रकृति के अनुसार या तो नस्तीबद्ध किया जाता है, गंभीर मामलों को निरीक्षण प्रतिवेदन में तथा लघु कमियों को नमूना जाँच टिप्पणी में सम्मिलित किया जाता है। निरीक्षण प्रतिवेदन एवं नमूना जाँच टिप्पणी का प्रारूप इकाई पर ही तैयार किया जाता है।

**अंतिम बैठक**

लेखापरीक्षा के अंतिम दिन कार्यालय प्रमुख एवं लेखापरीक्षा दल के मध्य अंतिम बैठक आयोजित की जाती है, जिसमें निरीक्षण प्रतिवेदन एवं नमूना जाँच टिप्पणियों पर चर्चा की जाती है। चर्चा के बिंदुओं एवं लेखापरीक्षा के दौरान प्रदत्त सहयोग के लिए आभार व्यक्त करते हुए कार्यवृत्त तैयार किया जाता है, जिस पर कार्यालय प्रमुख एवं दल प्रमुख के हस्ताक्षर किए जाते हैं।

**निरीक्षण प्रतिवेदन**

अंतिम बैठक के पश्चात निरीक्षण प्रतिवेदन को अंतिम रूप दिया जाता है, जिसमें लेखापरीक्षा के दौरान जारी समस्त ज्ञापन, आपत्तियों/अनियमितताओं से संबंधित मूल साक्ष्य, दल सदस्यों की दैनंदिनी, कार्य वितरण पत्रक, विस्तृत लेखापरीक्षा माहों के आहरण एवं संवितरण पत्रक, कोषालय/बैंक मिलान पत्रक, सेवा पुस्तिका, भविष्य निधि एवं भंडार जाँच से संबंधित अभिलेख, प्रारंभिक एवं अंतिम बैठकों के कार्यवृत्त बना कर लेखापरीक्षा दल द्वारा इसे मुख्यालय कार्यालय संपादन अनुभाग को प्रेषित कर दिया जाता है।

निरीक्षण प्रतिवेदन को पाँच भागों में विभाजित किया जाता है: प्रथम भाग में कार्यालय की प्रारंभिक जानकारी, द्वितीय भाग में गंभीर एवं अन्य अनियमितताएँ, तृतीय भाग में नमूना जाँच टिप्पणियां/आंतरिक नियंत्रण संबंधी कंडिकाएँ, चतुर्थ भाग में कार्यालय के अच्छे कार्य, पंचम भाग में कार्यालय प्रमुख एवं कार्मिकों द्वारा प्रदत्त सहयोग के लिए आभार।

तत्पश्चात लेखापरीक्षा दल द्वारा निरीक्षण प्रतिवेदन लेखापरीक्षा कार्यालय के संपादन अनुभाग को प्रेषित किया जाता है एवं दल दौरा कार्यक्रमानुसार अगली इकाई की लेखापरीक्षा प्रारंभ करता है।

**निरीक्षण प्रतिवेदन जारी किया जाना**

संपादन अनुभाग द्वारा प्राप्त निरीक्षण प्रतिवेदन की संवीक्षा/समीक्षा की जाती है तथा महत्वपूर्ण एवं लेखापरीक्षा प्रतिवेदन में शामिल किए जाने वाले कंडिकाओं को रिपोर्ट अनुभाग को ड्राफ्ट पैरा के रूप में जारी करने के लिए प्रेषित कर दिया जाता है। समूह अधिकारी के अनुमोदन पश्चात, अनुमोदित निरीक्षण प्रतिवेदन को संबंधित विभाग प्रमुख, वित्त विभाग एवं संबंधित इकाई को प्रेषित किया जाता है।

# हिंदी : एक भाषा नहीं, एक अनुभव

**निधि गौतम**
कनिष्ठ हिंदी अनुवादक

हिंदी भाषा की सुंदरता पर लिखना अपने–आप में एक साधना जैसा है– जितना लिखो, उतना ही लगता है कि अभी बहुत कुछ शेष है। हिंदी केवल संवाद की भाषा नहीं है, बल्कि एक संवेदना है, एक अनुभव है ।

हिंदी को समझने के लिए केवल उसका व्याकरण जानना पर्याप्त नहीं है। हिंदी को महसूस करना पड़ता है। यह वह भाषा है जिसमें माँ की लोरी भी है और वीर रस का रणघोष भी। इसमें तुलसी का भक्ति रस है, कबीर का निर्भीक प्रश्न है, मीरा की विरह–व्यथा है और निराला की विद्रोही चेतना भी। हिंदी का सौंदर्य इस बात में नहीं कि वह कितनी "शुद्ध" है, बल्कि इस बात में है कि वह कितनी स्वाभाविक है।

हिंदी बोलते समय शब्द केवल शब्द नहीं रहते–वे दृश्य बन जाते हैं, ध्वनियाँ बन जाते हैं, कभी–कभी तो पूरे युग को आँखों के सामने खड़ा कर देते हैं।

ऐसे ही एक दिन अचानक बेर खाते हुए महाकवि भूषण याद आये जिनकी पंक्तियाँ विद्यार्थी जीवन में अपनी पढ़ाई के दौरान कभी यमक अलंकार के बेहतरीन उदाहरण के रूप में पढ़ी थीं, वे सही– सही तो नहीं कुछ आगे पीछे, कुछ आधी –अधूरी स्मरण जरूर थी, गूगल करके इन्हें देखा जो कुछ इस तरह थीं –

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहन वारी,
ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।
कंद मूल भोग करैं, कंद मूल भोग करैं,
तीन बेर खातीं, ते वे तीन बेर खाती हैं॥
भूषन शिथिल अंग, भूषन शिथिल अंग,
बिजन डुलातीं ते वे बिजन डुलाती हैं।
'भूषन भनत सिवराज बीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वे नगन जड़ाती हैं॥

अब जरा ठहरकर इन पंक्तियों को देखिए–

यहाँ कवि यह नहीं कह रहा कि शिवाजी के डर से शत्रु भाग गए। वह यह कहता है कि जो स्त्रियाँ कभी ऊँचे, सुरक्षित महलों में रहती थीं, अब घने जंगलों और दुर्गम स्थानों में रहने को विवश हैं। जो कभी विविध भोग–विलास का जीवन जीती थीं, वे अब केवल कंद–मूल खाकर दिन काट रही हैं। जो तीन बेर (दिन में तीन

बार) खाना खातीं थी वे तीन बेर (केवल तीन बेर) खाकर रह जाती हैं। जिनके अंगों पर आभूषण शोभा पाते थे, वे अब ढीले पड़ चुके हैं। और अंत में–शिवाजी के भय से वे अपने गहने तक उतार चुकी हैं। पूरा छंद यमक अलंकार के सुंदर प्रयोगों से सुसज्जित है। इस प्रकार के उदाहरण दुर्लभ हैं।

एक भी जगह "डर", "पराजय" या "हार" जैसे शब्द नहीं आए–फिर भी डर, पराजय और त्रास पाठक की नसों में उतर जाता है। यही हिंदी की असली शक्ति है : संकेत में कह देना, और शेष पाठक की अनुभूति पर छोड़ देना। एक–एक पंक्ति में अर्थ की कई परतें, ध्वनि की लय और भाव की तीव्रता ऐसे समाहित है कि उसे किसी दूसरी भाषा में ले जाना लगभग असंभव सा लगता है।

अंग्रेजी या अन्य भाषाएँ अक्सर "डायरेक्ट" होती हैं–वे स्पष्ट कहती हैं। हिंदी इशारा करती है। हिंदी मौन की भाषा भी है। वह जानती है कि कब चुप रहकर अधिक कहा जा सकता है। अंग्रेजी एवं अन्य भाषाओँ में यमक अलंकार अथवा **'Pun'** का प्रयोग अक्सर होता है। परन्तु हिंदी भाषा में जो भाव पाठक महसूस करता है, उसकी बात ही अलग है। मान लीजिए एक बेटा सालों बाद घर लौटा है। माँ दरवाजे पर खड़ी है।

वह कुछ बड़ा भाषण नहीं देती। बस कहती है–

"आ गया?"

यह सवाल नहीं है। इसमें गिनती नहीं है कि कितने साल बाद आया। इसमें शिकायत नहीं है कि फोन क्यों नहीं किया।

इस "आ गया?" में छुपा है– इंतजार, डर, राहत और वो अनकही ममता जो कहती है– अब सब ठीक है

अगर इसे अंग्रेजी में कहें: "यू आर बैक??"

वाक्य वही है, पर भाव नहीं आता।

इसमें सूचना है, हिंदी में अपनापन है।

हर भाषा सुंदर है,

पर हिंदी भावों की भाषा है। हिंदी में शब्द कम होते हैं,

लेकिन खामोशी ज्यादा बोलती है। दूसरी भाषाएँ बात कहती हैं।

हिंदी हाल–ए–दिल रख देती है।

"नगन जड़ातीं"–सिर्फ दो शब्द, और पूरा सामाजिक–मानस सामने आ जाता है। गहने केवल आभूषण नहीं थे; वे सुरक्षा थे, प्रतिष्ठा थे, पहचान थे। उनका उतार दिया जाना केवल गरीबी नहीं, बल्कि भय और अस्थिरता का संकेत है।

हिंदी की एक और अद्वितीय विशेषता है उसकी ध्वन्यात्मकता। "ऊँचे घोर मंदर"–इन शब्दों को जोर से पढ़िए। 'घोर' शब्द स्वयं में भय पैदा करता है। 'मंदर' की ध्वनि भारीपन देती है। यही कारण है कि हिंदी कविता केवल पढ़ी नहीं जाती–वह सुनी जाती है। रीतिकालीन कविता में पुनरुक्ति (दोहराव) को दोष नहीं, सौंदर्य माना गया। "कंद मूल भोग करैं, कंद मूल भोग करैं"–यह दोहराव अभाव की तीव्रता को बढ़ाता है। हिंदी में दोहराव अक्सर भाव को गहरा करता है, बोझिल नहीं बनाता।

हिंदी की जड़ें लोक में हैं। वह खेत से आई है, चौपाल से आई है, नदी और जंगल से आई है। इसलिए वह जीवन के सूक्ष्मतम अनुभवों को भी सहजता से अभिव्यक्त कर देती है।

यह कहना कि "हिंदी को अंग्रेजी में अनुवाद किया जा सकता है" तकनीकी रूप से सही हो सकता है, लेकिन भावनात्मक रूप से अधूरा है। शब्दों का अनुवाद हो सकता है, अनुभूति का नहीं। भूषण की पंक्तियों को अंग्रेजी में समझाया जा सकता है, पर वह अनुभूति—कि शिवाजी का भय कितना गहरा है— वह अनुवाद में बिखर जाती है। हिंदी में वह एक साथ दृश्य, भाव और इतिहास बनकर सामने आती है।

हिंदी की सुंदरता का एक बड़ा कारण उसका लचीलापन है। उसने संस्कृत से गंभीरता ली, फारसी—अरबी से नजाकत ली, लोकभाषाओं से सादगी ली, और आधुनिक समय में अंग्रेजी से तकनीकी शब्द भी बिना झिझक अपनाए। फिर भी हिंदी अपनी आत्मा नहीं खोती। वह हर शब्द को "हिंदी का" बना लेती है। यही कारण है कि हिंदी कभी बोझिल नहीं लगती—वह बहती भाषा है।

हिंदी में रिश्तों के लिए शब्द हैं—और हर शब्द का अपना भाव है:

माँ, अम्मा, माई, जननी—चार शब्द, चार अलग अनुभूतियाँ।

हिंदी रिश्तों को वर्गीकृत नहीं करती, वह उन्हें महसूस कराती है।

आज के समय में जब संक्षिप्तता और गति का बोलबाला है, हिंदी और भी प्रासंगिक हो जाती है। वह कम शब्दों में अधिक कह सकती है। सोशल मीडिया से लेकर साहित्य तक—हिंदी हर जगह अपने नए रूप में मौजूद है।

लेकिन चुनौती यह है कि हम उसकी गहराई को न भूलें। भूषण, तुलसी, कबीर जैसे कवि हमें याद दिलाते हैं कि हिंदी केवल "कम्युनिकेशन टूल" नहीं है—वह सांस्कृतिक चेतना है।

हिंदी इसलिए सुंदर नहीं है कि वह हमारी मातृभाषा है। हिंदी इसलिए सुंदर है क्योंकि वह मनुष्य की पूरी भावनात्मक परिधि को छू सकती है—वीरता से लेकर विरक्ति तक, प्रेम से लेकर प्रतिरोध तक।

भूषण की दी हुई पंक्तियाँ इसका सशक्त उदाहरण हैं—जहाँ एक वीर राजा का पराक्रम स्त्रियों के जीवन में आए परिवर्तन से मापा जाता है। यह दृष्टि, यह संवेदना, यह सांकेतिक गहराई—यही हिंदी को अद्वितीय बनाती है। भला हो उन बेरों का कि देर सबेर यह बेर भूषण की इन पंक्तियों के पुर्नस्मरण का कारण बने।

हिंदी में एक पंक्ति इतिहास बन सकती है। हिंदी में एक शब्द पूरा दृश्य रच सकता है। शब्दों के अद्‌भुत खेल हिंदी भाषा में ही संभव है।

यही हिंदी का सौंदर्य है।

# पीला सेमल

**श्रीमती सारिका शर्मा**
**पर्यवेक्षक**

हमारे कार्यालय के परिसर में पीले सेमल का बड़ा एवं पुराना पेड़ लगा है। पतझड़ में इसके सभी पत्ते झड़ जाते हैं और बसंत में इसमें फूल आते हैं। वर्ष 2004 में ऑडिट भवन बनने के बाद से हर साल इसके फूलों को खिलता देख आनंदित होती हूँ।

सेमल वृक्ष वनों के साथ–साथ शहरों में भी काफी पाया जाता है। लाल रंग के फूल वाले सेमल के कई वृक्ष हमारे शहर में है। पर पीला सेमल (पीला सिल्क कॉटन वृक्ष) एक दुर्लभ और आकर्षक वृक्ष है। पीला सेमल मुख्य रूप से मध्य प्रदेश के पन्ना और जबलपुर क्षेत्रों में अधिकांशतः पाया जाता है।

सेमल का वैज्ञानिक नाम बॉम्बेक्स सेइबा है। यह तेजी से बढ़ने वाला पेड़ है जो औषधीय गुणों के लिये भी जाना जाता है। इसे अंग्रेजी में कॉटन ट्री भी कहा जाता है। क्योंकि इसके फलों से रूई भी प्राप्त होती है। सेमल का पेड़ प्रकृति और मनुष्य दोनों के लिये महत्वपूर्ण है। यह पक्षियों और परायण करने वाले कीटों को आश्रय और अमृत प्रदान करता है। इसके फल से प्राप्त रूई जैसे रेशों का उपयोग तकियों और गद्दों में उपयोग किया जाता है। जबकि इसकी मजबूत लकड़ी का उपयोग फर्नीचर, नावों और माचिस की तीलियों के निर्माण में होता है। पर सेमल की लकड़ियों का उपयोग जलाने के लिये नहीं किया जाता है।

सेमल के तने पर मोटे तीक्ष्ण कांटे होते हैं, जिस कारण संस्कृत में इसे कंटक द्रुम नाम भी मिला है। इसके तने पर जो काँटे उगते हैं वे पेड़ के बड़े होने पर कम हो जाते हैं। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि युवावस्था में पेड़ को जानवरों से सुरक्षा की जरूरत होती है, जबकि बड़ा होने पर यह आवश्यकता समाप्त हो जाती है।

पीला सेमल, लाल सेमल की तुलना में अत्यंत कम पाया जाता है। पतझड़ में पेड़ के अधिकांश पत्ते झड़ जाते हैं। बसंत में यह पर्णविहीन, सूखा–सा दिखाई देने वाला वृक्ष प्यालेनुमा पीले फूलों से भर जाता है।

इसके इस पर्णविहीन एवं फिर फूलों से भरे हुये स्वरूप को देखकर ही किसी ने कहा है।

**पत्ता नहीं एक, फूल हजार**
**क्या खूब छाई है, सेमल पर बहार**

सेमल के पेड़ में ऐसी जीवंतता है जो न केवल मनुष्यों को बल्कि पक्षियों और कीड़ों को भी आकर्षित करता है। सेमल का अवलोकन करना पारिस्थितिकी और अंतःसंबंधों को भी समझना है।

कबीरदास जी ने संसार को सेमल के फूल के समान बताया है। जिस तरह सेमल का फूल रूई बन सब जगह उड़ जाता है, मानव जीवन भी इसी तरह क्षण भंगुर है। इसलिये हमें इस जीवन के झूठे रंग में रंगकर अभिमान नहीं करना चाहिये।

**कबीर ऐसा यहु संसार है, जैसा सेमल फूल।**
**दिन दस के व्यौहार में झूठै रंगि न भूलि।।**

# "कृतज्ञता एक नैतिक क्षमता, भावुकता नहीं"

**आलोक कुमार**
लेखापरीक्षक

किसी भी उन्नत समाज की आधारशिला केवल उसकी उपलब्धियों पर नहीं, बल्कि उसके साथ–साथ नैतिक मूल्यों पर टिकी होती है जो अदृश्य रह कर भी मानव जीवन के चरित्र को गढ़ते हैं। समकालीन जगत में जहाँ सफलता की परिभाषा अत्यंत संकुचित एवं आत्म केंद्रित हो गई है, वहाँ कृतज्ञता जैसे विषय पर प्रकाश डालना अनिवार्य सिद्ध होता है।

कृतज्ञता को उसके सतही अर्थों से मुक्त कर उसे एक अनिवार्य "नैतिक सामर्थ्य के रूप में स्थापित करना आज के समय की माँग है।

**कृतज्ञताः एक नैतिक सामर्थ्य का अधिष्ठान**

प्रायः कृतज्ञता को एक कोमल भावना, एक भावुक स्पंदन या शिष्टाचार का पर्याय मान लिया जाता है। परंतु यदि हम सूक्ष्म विश्लेषण करें तो पायेंगे कि कृतज्ञता वस्तुतः भावुकता नहीं, अपितु एक नैतिक क्षमता है। यह मन की एक क्षणिक अवस्था नहीं बल्कि चरित्र का एक महत्वपूर्ण गुण है जो मनुष्य को आत्ममुग्धता के कुहासे से बाहर निकाल कर सत्य के प्रकाश में खड़ा करता है।

भावुकता और नैतिकता के मध्य महीन परंतु सुस्पष्ट विभाजन रेखा होती है। भावुकता अक्सर प्रतिक्रियात्मक होती है परंतु नैतिक क्षमता के रूप में कृतज्ञता 'सचेत चुनाव' की माँग करती है। दार्शनिकों ने कृतज्ञता जाहिर करने को पवित्र कर्त्तव्य की श्रेणी मे विराजित किया है।

'इगो' से 'इको' तक के सफर में समाज का 1% तबका चाहे वे बौद्धिक रूप से हो या प्रशासनिक रूप से – वे यह जानते हैं स्वावलंबन एक मिथक है। कोई भी व्यक्ति शून्य से निर्मित नहीं होता। हमारी दिनचर्या में चाहे वह किसी संगठन की बात हो या एक घर की। उसके सुचारु रुप से संचालन में छोटे से लेकर बड़े तक सबकी भागीदारी आवश्यक एवं अनिवार्य होती है। यह स्वीकार करना बौद्धिक ईमानदारी है।

'मैं जो कुछ भी हूँ, अकेले अपने दम पर नहीं हूँ' यह वाक्य अहंकार का विसर्जन माँगता है। जो व्यक्ति कृतज्ञ नहीं हो सकता, वह बौद्धिक रूप से दरिद्र है, क्योंकि वह यह देखने की क्षमता खो चुका है कि समाज की हर इकाई ने मिलकर उसे इस स्थान तक पहुँचाया है।

विश्व के महानतम मस्तिष्क कृतज्ञता को शक्ति का स्रोत मानते रहे हैं। कृतज्ञता से रहित व्यक्ति को मानसिक रूप से कमजोर–एक छिछला आवरण इस सत्य से बहुत दूर करता है कि एक सफाई कर्मचारी से लेकर अनेक रोजमर्रा के सामाजिक कार्य करते हुए विभिन्न व्यक्ति समाज की उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। हाँ, हम उनके प्रति भावुकता का भाव तो रखते है परंतु यह स्वीकार करना कि वे समाज की उन्नति का एक स्तम्भ हैं, इस पर शायद ही विचार करते हैं। परंतु, यदि उनकी अनुपस्थिति में समाज की अवस्था पर विचार करें तो स्थिति दयनीय सी नजर आती है।

**एक सक्रिय संकल्प**

कृतज्ञता जब एक नैतिक क्षमता बनती है, तो वह केवल 'धन्यवाद' के शब्दों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह 'प्रतिदान' के संकल्प में परिवर्तित हो जाती है। यह हमें न्यायप्रिय बनाती है। एक न्यायप्रिय व्यक्ति कभी दूसरों के श्रम का श्रेय स्वयं नहीं लेता। वह जानता है कि कृतज्ञता का अभाव दरअसल 'नैतिक चोरी' है।

अंततः कृतज्ञता कोई विलासिता नहीं बल्कि एक उन्नत चरित्र की अनिवार्यता है। यह हमें याद दिलाती है कि हम एक वृहत ब्रह्माण्ड का एक तुच्छ सा हिस्सा हैं और यह सोच व्यक्ति को आत्ममुग्धता से बाहर निकालती है एवं मनुष्य को उपभोक्ता से साधक बना देती है।

यदि हम समाज में एक वास्तविक सकारात्मक परिवर्तन लाना चाहते है, तो हमें कृतज्ञता को एक दुर्बल भावुकता के रूप में नहीं, बल्कि एक कठोर नैतिक अनुशासन के रूप में अपनाना होगा। जिस दिन हम इसे अपने चरित्र का स्थायी हिस्सा बना लेंगे, उस दिन हम केवल एक अधिकारी या सफल व्यक्ति ही नही बल्कि एक पूर्ण मनुष्य कहलाने के अधिकारी होंगे।

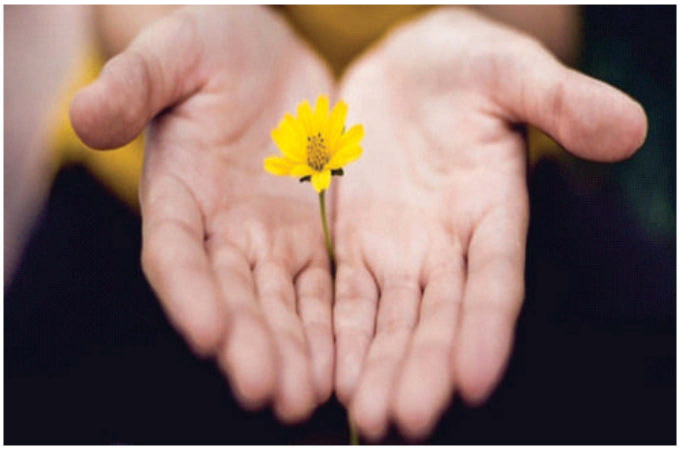

दैनिक जीवन में छोटे छोटे सहयोग या उपकारों के लिए जब सहयोगियों और उपकर्ताओं का आभार व्यक्त करते हैं, तो उसका बड़ा सकारात्मक प्रभाव दोनों पक्षों पर समान रूप से होता है। बहुत से विद्वानों का मत है कि दुनियादारी के प्रतिदिन के व्यवहार में सहयोगियों के प्रति आभारी होना ही चाहिए; लेकिन ईश्वर के प्रति भी आभारी होना चाहिए क्योंकि जो हमें मिला है, वह बहुत सारे लोगों के पास नहीं है। एक व्यक्ति जिसके न होने को लेकर बड़े कष्ट में है, उसके लिए ईश्वर तक को उलाहना देता है कि तूने हमें इससे वंचित रखा है, लेकिन दूसरा जिसके पास वह सब है, उसके होने का कोई अहसास ही नहीं करता। अगर व्यक्ति जो है उसको लेकर होने का अनुभव करे तो उसके मनोभाव निराशा से उत्साह में बदल जाते हैं।

भारतीय संस्कृति में कृतज्ञता प्रत्येक कार्य में दिखाई देती थी। जब भी हम प्रकृति से कुछ लेते हैं, तब प्रकृति के प्रति कृतज्ञता भाव से उसके संरक्षण की कामना के साथ साथ प्रयास भी करते हैं। इसी भाव को समेटते हुए विविध वनस्पतियों को माता के रूप में पूजना अर्थात् संरक्षण की व्यवस्था बनाई गई थी। यही कृतज्ञता आशीर्वाद देने वाले के प्रति भी होना, आशीर्वाद को फलीभूत करता है।

दुर्योधन श्रीकृष्ण से युद्ध में सहायता अहम् भाव से माँगता है। उसे सिर्फ सेना मिलती है, विजय नहीं। अर्जुन कृतज्ञभाव से आशीर्वाद माँगते हैं। उन्हें श्रीकृष्ण मिलते हैं। जहाँ श्रीकृष्ण, वहाँ विजय/सफलता/कल्याण सुनिश्चित है। वस्तुतः आशीर्वाद में आशीर्वाद पाने वाले मन में कृतज्ञता का भाव होना आवश्यक है। बिना कृतज्ञता के प्रार्थना और आशीर्वाद दोनों ही निष्फल हैं।

# एक किश्त

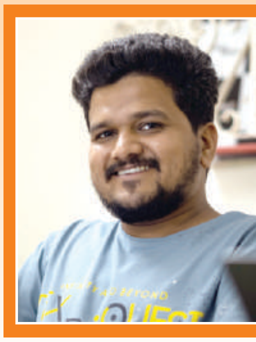

**चंद्रपाल सिंह यादव**
लेखापरीक्षक

एक किश्त भरनी है मातृत्व की,
एक किश्त भरनी है पिता की भी,
एक किश्त भरनी है बहन के नाम,
एक किश्त जानी है भाई को भी।

एक किश्त चुकाऊँगा गुरु को अपने,
एक किश्त बकाया है मित्र की भी,
एक किश्त रह गई है प्रियतमा की,
एक किश्त रह जाएगी अर्धांगिनी की।

एक किश्त बालक के नाम भी करनी है,
एक किश्त जाएगी कन्यादान में भी,
एक किश्त देता रहूँगा शौक को अपने,
एक किश्त कटती है मेरे काम की भी।

एक किश्त ले जाता है समाज मुझसे,
एक किश्त चलती रहेगी मेरे मान की भी,
एक किश्त बचा के रखनी पड़ेगी,
एक आखिरी देनी होगी श्मशान में भी।

इतनी किश्तें भरकर जो मैं,
थोड़ा रह गया बाकी अगर,
एक किश्त भर दूँगा अपने आप की भी।

बड़ी महंगी हो गई है जिंदगी 'राजी'
आप बताओ, कितनी किश्त बनती हैं आपकी?

# भारतीय महिलाओं की शिक्षाः महत्व और संवैधानिक सशक्तिकरण

**पुष्पांजलि विश्वकर्मा**
लेखापरीक्षक

हमारे भारतीय समाज में जहाँ विद्यार्जन के लिए पूजे जाने के लिए एक स्त्री 'माँ सरस्वती' को मूर्त रूप दिया गया, वहीं पर महिलाओं को अपने हक के विद्यार्जन के लिए लंबे समय तक काफी संघर्ष करना पड़ा है। आज के वर्तमान समाज में जहाँ हम विकसित भारत की ओर अग्रसर हो रहे हैं, वहीं पर भारत के न जाने ऐसे कितने कोने है जहाँ पर महिलाओं को अपने हक के लिए न जाने कितना संघर्ष करना पड़ता है। आज के हालात में संविधान हमें सुरक्षा देता है, लेकिन बात जब कागजों से निकल कर जमीनी स्तर पर देखी जाती है, हकीकत कुछ और ही निकल कर आती है। स्त्रियों की शिक्षा को केवल ये आधार दिया जाता है कि जब एक पढ़ी लिखी लड़की ब्याह कर आएगी तो होने वाले बच्चों को ज्यादा अच्छे से संभाल पायेगी।

हम अक्सर सुनते और पढ़ते रहते हैं कि शिक्षा किसी भी सभ्यता की आत्मा होती है और समाज की दिशा तथा दशा को निर्धारित करने में इसकी भूमिका निर्णायक होती है। लेकिन महिलाओं की शिक्षा केवल एक सामाजिक आवश्यकता नहीं, बल्कि मानवाधिकार और लोकतांत्रिक मूल्यों की अनिवार्य शर्त है। भारतीय संदर्भ में महिलाओं की शिक्षा का प्रश्न अत्यंत जटिल और बहुआयामी रहा है, क्योंकि यह परंपरा, धर्म, सामाजिक संरचना, राजनीति और संविधान–सभी से जुड़ा हुआ है।

प्राचीन भारत में महिलाओं की शिक्षा की स्थिति अपेक्षाकृत सम्मानजनक थी। वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य केवल आजीविका अर्जन नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण और आत्मबोध था। इस काल में महिलाओं को शिक्षा का अधिकार प्राप्त था और वे बौद्धिक विमर्श में सक्रिय रूप से भाग लेती थी। किंतु जैसे–जैसे समाज अधिक रूढ़िवादी होता गया, महिलाओं की भूमिका को घरेलू दायरे तक सीमित कर दिया गया और शिक्षा का अधिकार धीरे–धीरे उनसे छिनता चला गया।

समय बीतने के साथ महिलाओं की शिक्षा की स्थिति और अधिक खराब हो गई। राजनीतिक अस्थिरता, लगातार युद्ध, सामाजिक असुरक्षा और कठोर धार्मिक व्याख्याओं ने महिलाओं की स्वतंत्रता को सीमित कर दिया। पर्दा प्रथा, बाल विवाह और सती जैसी कुप्रथाओं ने महिलाओं को शिक्षा से पूर्णतः वंचित कर दिया। शिक्षा को पुरुषों का विशेषाधिकार माना जाने लगा और महिलाओं को केवल पत्नी और माँ की भूमिका तक सीमित कर दिया गया। यद्यपि कुछ शाही और अभिजात वर्ग की महिलाएँ शिक्षित थीं, परंतु उनकी शिक्षा का लाभ सामान्य समाज तक नहीं पहुँच सका।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय समाज में परिवर्तन की चेतना जागृत हुई। औपनिवेशिक शासन के दौरान पश्चिमी शिक्षा प्रणाली के आगमन ने मानवाधिकार, स्वतंत्रता और समानता जैसे विचारों को जन्म दिया। इसी पृष्ठभूमि में सामाजिक सुधार आंदोलनों ने महिलाओं की स्थिति पर गंभीर प्रश्न उठाए। राजा राममोहन राय ने महिलाओं को बौद्धिक रूप से सक्षम मानते हुए सती प्रथा का विरोध किया और शिक्षा को सामाजिक सुधार का आधार बनाया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने बालिकाओं के लिए विद्यालयों की स्थापना की और विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया।

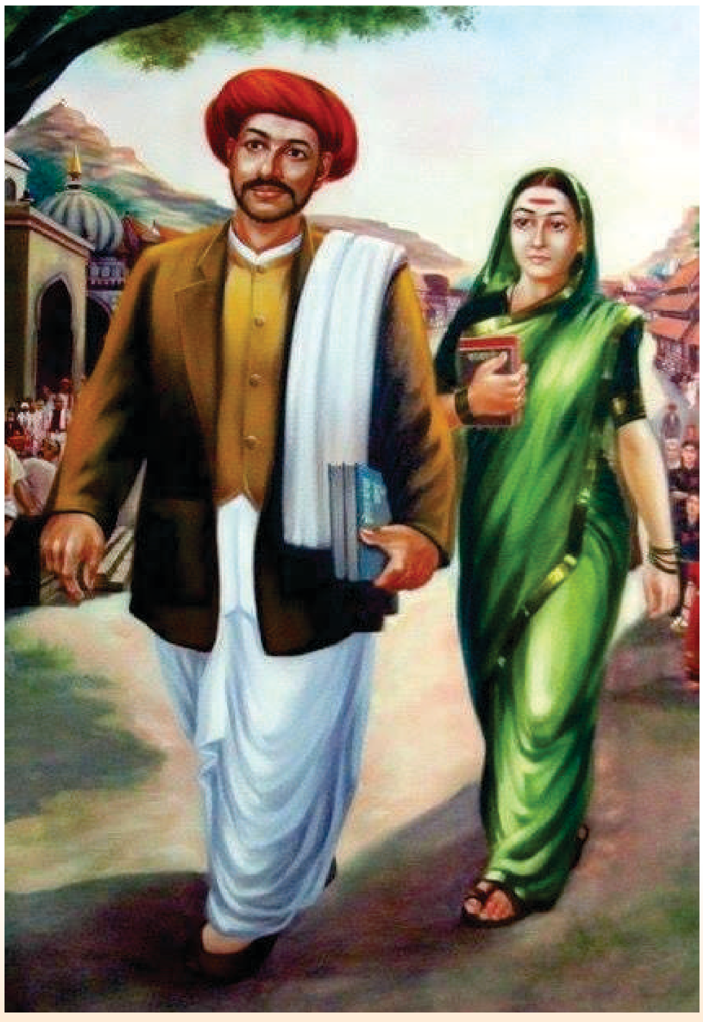

महिला शिक्षा के क्षेत्र में ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले का योगदान ऐतिहासिक महत्व रखता है। सावित्रीबाई फुले ने समाज के तीव्र विरोध, अपमान और हिंसा का सामना करते हुए भी बालिकाओं और दलित महिलाओं को शिक्षा प्रदान की। उनका प्रयास यह दर्शाता है कि महिलाओं की शिक्षा केवल लैंगिक समानता का प्रश्न नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और मानव गरिमा का भी प्रश्न है। इसी क्रम में पंडिता रमाबाई ने विधवाओं और निराश्रित महिलाओं के लिए शिक्षा को आत्मनिर्भरता का माध्यम बनाया, जबकि बेगम रूकैया ने मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा के माध्यम से रूढ़िवादी सोच को चुनौती दी।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ने महिलाओं की शिक्षा को राष्ट्र निर्माण से जोड़ा। महात्मा गांधी ने शिक्षा को नैतिकता, आत्मनिर्भरता और सामाजिक जिम्मेदारी से जोड़ते हुए महिलाओं की भागीदारी पर बल दिया।

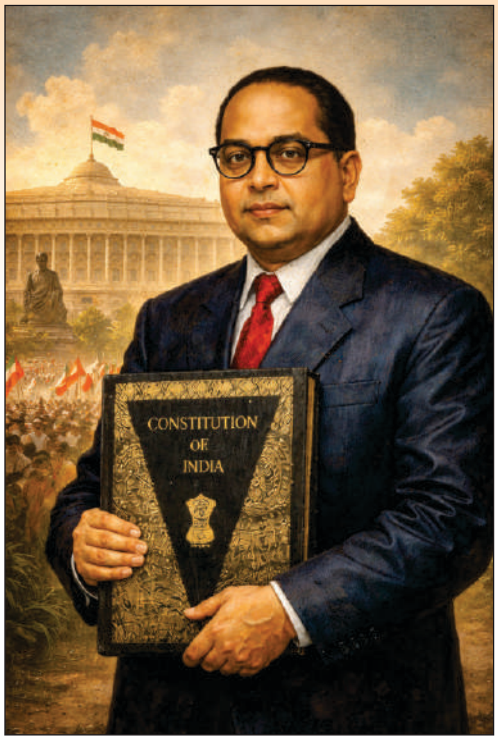


डॉ. भीमराव अंबेडकर भारतीय समाज में महिलाओं के अधिकारों और शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि किसी भी समाज की वास्तविक प्रगति महिलाओं की स्थिति से आँकी जा सकती है। वे शिक्षा को सामाजिक मुक्ति का सबसे सशक्त माध्यम मानते थे, विशेषकर महिलाओं और वंचित वर्गों के लिए। बाबा साहेब का विचार था कि अशिक्षित महिला सदैव शोषण की शिकार रहती है, जबकि शिक्षित महिला अपने अधिकारों को पहचानकर उनके लिए संघर्ष कर सकती है।

भारतीय संविधान के प्रमुख शिल्पकार के रूप में उन्होंने महिलाओं को कानून के समक्ष समानता, भेदभाव से मुक्ति और शिक्षा का अधिकार प्रदान किया। उन्होंने संविधान में 'अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 15(1), अनुच्छेद 15(3), अनुच्छेद 16, अनुच्छेद 21, अनुच्छेद 21 I, अनुच्छेद 39(क), अनुच्छेद 42, अनुच्छेद 46' जैसे अनेक अनुच्छेद संविधान में प्रस्तुत किये, जोकि मिलकर भारतीय संविधान में महिलाओं की शिक्षा, समानता और सशक्तिकरण का मजबूत ढाँचा तैयार करते हैं। उन्होंने हिंदू कोड बिल के माध्यम से महिलाओं को संपत्ति, विवाह और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से जुड़े अधिकार दिलाने का प्रयास किया। इस प्रकार बाबा साहेब अंबेडकर ने शिक्षा और कानून के माध्यम से महिलाओं के सशक्तिकरण की मजबूत नींव रखी।

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय राज्य ने महिलाओं की शिक्षा को संवैधानिक संरक्षण प्रदान किया। भारतीय संविधान ने महिलाओं को कानून के समक्ष समानता, भेदभाव से मुक्ति और शिक्षा का अधिकार प्रदान किया। संविधान की यह विशेषता है कि यह केवल औपचारिक समानता तक सीमित नहीं है, बल्कि महिलाओं के लिए विशेष प्रावधानों के माध्यम से वास्तविक समानता स्थापित करने का प्रयास करता है। शिक्षा के अधिकार ने महिलाओं को विद्यालय और उच्च शिक्षा संस्थानों तक पहुँच प्रदान की, जिससे उनके जीवन के विकल्प विस्तृत हुए।

महिलाओं के लिए शिक्षा का महत्व केवल संवैधानिक या ऐतिहासिक संदर्भों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उनके दैनिक जीवन और सामाजिक स्थिति को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। शिक्षा महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाती है और उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करती है। आर्थिक स्वतंत्रता महिलाओं को आत्मसम्मान और निर्णय लेने की शक्ति देती है, जिससे वे पारिवारिक और सामाजिक जीवन में समान भागीदार बनती हैं। शिक्षित महिला केवल आजीविका अर्जित करने में ही सक्षम नहीं होती, बल्कि वह अपने जीवन की दिशा स्वयं निर्धारित कर सकती है।

शिक्षा महिलाओं को सामाजिक रूप से जागरूक और सचेत नागरिक बनाती है। शिक्षित महिलाएँ सामाजिक कुरीतियों पर सवाल करती हैं और अपने अधिकारों के प्रति सजग रहती हैं। वे बाल विवाह, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा और लैंगिक भेदभाव जैसी समस्याओं को व्यक्तिगत दुर्भाग्य नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय के रूप में देखती हैं। इस दृष्टिकोण से शिक्षा महिलाओं को परिवर्तन की वाहक बनाती है और समाज को अधिक न्यायपूर्ण बनाने में सहायक होती है।

महिलाओं की शिक्षा का प्रभाव परिवार और समाज की भावी पीढ़ियों पर भी पड़ता है। एक शिक्षित महिला बच्चों के स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा के प्रति अधिक संवेदनशील होती है। वह परिवार में स्वच्छता, अनुशासन और नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देती है। इस प्रकार महिला शिक्षा केवल वर्तमान का नहीं, बल्कि भविष्य का भी निर्माण करती है। यही कारण है कि महिला शिक्षा को पीढ़ीगत विकास का आधार माना जाता है।

शिक्षा और महिला सशक्तिकरण के बीच गहरा और अविच्छिन्न संबंध है। शिक्षा महिलाओं में आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता और सार्वजनिक जीवन में भागीदारी की योग्यता विकसित करती है। आज शिक्षित महिलाएँ राजनीति, प्रशासन, विज्ञान, शिक्षा और व्यवसाय जैसे क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। उनकी भागीदारी लोकतंत्र को अधिक समावेशी और संवेदनशील बनाती है।

हालाँकि भारत में महिला शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, फिर भी अनेक चुनौतियाँ बनी हुई हैं। गरीबी, सामाजिक रूढ़ियाँ, सुरक्षा की कमी, डिजिटल असमानता और ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक संसाधनों का अभाव आज भी महिलाओं की शिक्षा में बाधा उत्पन्न करते हैं। इन समस्याओं का समाधान केवल सरकारी नीतियों से नहीं, बल्कि सामाजिक सोच में परिवर्तन से संभव है। परिवार और समाज को यह समझना होगा कि महिलाओं की शिक्षा कोई बोझ नहीं, बल्कि सबसे लाभकारी निवेश है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि भारतीय महिलाओं की शिक्षा की यात्रा अतीत की सीमाओं से वर्तमान के संघर्षों और भविष्य की संभावनाओं तक फैली हुई है। शिक्षा महिलाओं को न केवल ज्ञान प्रदान करती है, बल्कि उन्हें गरिमा, आत्मविश्वास और स्वतंत्रता भी देती है। जब महिलाएँ शिक्षित होती हैं, तब समाज अधिक न्यायपूर्ण, संवेदनशील और प्रगतिशील बनता है। इसलिए महिलाओं की शिक्षा को केवल एक सामाजिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि राष्ट्र के समग्र विकास की अनिवार्य शर्त के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

# "फाइलों के पार: लेखापरीक्षा में पर्यावरण, नैतिकता और सेवा"

**आशीष कुमार विश्वकर्मा**
सहायक पर्यवेक्षक

"पेड़ों की छाँव, हवा की साँस, इन पर भी क्या होगा हिसाब?
यदि विकास की इस दौड़ में, छूट गया मानवता का ख़्वाब"

सुबह–सुबह जब कार्यालय पहुँचते हुए सड़क के किनारे कटे हुए वृक्षों, धूल से आच्छादित हवा और भाग–दौड़ भरी जिंदगी दिखाई देती है, तो मस्तिष्क में एक प्रश्न सहसा ही उठ जाता है–

"क्या विकास की इस दौड़ में हम अपनी मूल जिम्मेदारियों को कहीं पीछे तो नहीं छोड़ आए हैं?"

सरकारी सेवक होने के नाते हम प्रतिदिन फाइलों, आँकड़ों और नियमों के बीच काम करते हैं, पर इन सबके पीछे जो अदृश्य एवं अनमोल मूल्य हैं–"पर्यावरण", "नैतिकता" और "सेवा"– वह किसी भी व्यवस्था की वास्तविक आत्मा होते हैं।

हमारे कार्यालय जीवन में ये तीनों मूल्य हर दिन किसी न किसी रूप में उपस्थित रहते हैं। जब हम किसी फाइल पर कार्य करते है, तो वह केवल कागज का पुलिंदा नहीं होती–उसके पीछे जनता का विश्वास, संसाधनों की पवित्रता और भावी पीढ़ी का भविष्य भी जुड़ा होता है। एक छोटी–सी लापरवाही पर्यावरणीय नुकसान का कारण बन सकती है, और एक छोटा–सा नैतिक समझौता व्यवस्था में गहरी दरार पैदा कर सकता है।

"नियम अगर रीढ़ हैं शासन की, तो नैतिकता उसकी आत्मा है;
जहाँ आत्मा मौन हो जाए, वहाँ व्यवस्था केवल ढांचा रह जाती है।"

एक सरकारी सेवक के रूप में हमारा दायित्व सिर्फ नियमों का पालन करना नहीं, बल्कि उनके पीछे छिपे उद्देश्य एवं व्यापक प्रभाव को भी समझना है। पर्यावरण संरक्षण हो या सार्वजनिक धन की जवाबदेही–दोनों का मूल भाव यही है कि हम आज के साथ–साथ आने वाले कल के प्रति भी जिम्मेदार रहें। जब हम निष्पक्षता, ईमानदारी और संवेदनशीलता के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं, तो वही हमारी सच्ची सेवा बन जाती है।

सेवा का अर्थ है–कार्य को बोझ नहीं, कर्तव्य और अवसर के रूप में देखना। यही दृष्टि हमारे कार्यालयीन जीवन को नौकरी से ऊपर उठाकर एक सार्थक सामाजिक योगदान में रूपांतरित करती है।

"सेवा वह नहीं जो दिखे मंचों पर, सेवा वह है जो चुपचाप निभाई जाए;
जहाँ नाम न हो, श्रेय न हो, पर अंतरात्मा निश्चिंत मुस्कुराए।"

पर्यावरण, नैतिकता और सेवा–ये तीनों अक्सर आदर्शवाद के रूप में देखे जाते हैं। किंतु लेखापरीक्षा व्यवस्था में ये आदर्श नहीं, बल्कि कार्य की आत्मा हैं। यह लेख इन्हीं मौन मूल्यों को शब्द देने का छोटा सा प्रयास है।

## 1. पर्यावरण : संतुलन का मौन शिक्षक

"धरती केवल संसाधन नहीं, वह आने वाले कल की धरोहर है;
जो आज उसका हिसाब नहीं रखेगा, कल वह स्वयं हिसाब के कटघरे में होगा।"

पर्यावरण केवल वृक्ष, जल, वायु या भूमि तक सीमित नहीं है। यह उन सभी प्राकृतिक संसाधनों का समुच्चय है, जिन पर मानव सभ्यता, अर्थव्यवस्था और शासन प्रणाली टिकी हुई है। जब इन संसाधनों का उपयोग असंतुलित, अनियोजित या अनैतिक तरीके से किया जाता है, तो उसका प्रभाव केवल प्रकृति तक सीमित नहीं रह जाता अपितु सामाजिक असमानता, आर्थिक बोझ और प्रशासनिक विफलता का रूप ले लेता है।

भारतीय चिंतन परंपरा में भी पर्यावरण को केवल उपभोग की वस्तु नहीं, बल्कि संरक्षण योग्य उत्तरदायित्व माना गया है—

**"माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु"**

**(अथर्ववेद १२.१.६२)**

**अर्थात— भूमि मेरी माता है और मैं इस पृथ्वी का पुत्र हूँ। मेघ मेरे पिता हैं जो हमारा पालन—पोषण करते हैं।**

यह दृष्टि हमें सिखाती है कि संसाधनों पर अधिकार से पहले कर्तव्य आता है।

लेखापरीक्षा में भी यही सिद्धांत लागू होता है। लेखापरीक्षा के दृष्टिकोण से पर्यावरणीय विषय अत्यंत संवेदनशील और बहुआयामी है। खनन परियोजनाएँ, सिंचाई योजनाएँ, विकास प्राधिकरणों के कार्य, औद्योगिक स्वीकृतियाँ, वन भूमि का हस्तांतरण, जल संरक्षण कार्यक्रम—ये सभी विषय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लेखापरीक्षा के दायरे में आते हैं। जब प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण परियोजनाओं से जुड़े प्रोजेक्ट्स, पर्यावरणीय स्वीकृतियाँ, खनन, जल संरक्षण या शहरी विकास से संबंधित योजनाओं की जाँच की जाती है, तो लेखापरीक्षा केवल वित्तीय अनियमितताओं तक सीमित नहीं रहता बल्कि ये प्रश्न भी उतने ही महत्वपूर्ण होते हैं कि—

- ✓ क्या पर्यावरणीय स्वीकृतियों की शर्तों का पालन किया गया?
- ✓ क्या पर्यावरण प्रभाव आकलन केवल औपचारिकता बनकर रह गया?
- ✓ क्या दीर्घकालिक पर्यावरणीय प्रभावों का समुचित मूल्यांकन हुआ?

पर्यावरणीय क्षति अक्सर कागजों में छोटे—छोटे विचलनों के रूप में छिपी रहती है। एक अपूर्ण रिपोर्ट, एक अनदेखी शर्त, या जल्दबाजी में दी गई स्वीकृति और उसका परिणाम वर्षों तक समाज को भुगतना पड़ सकता है। ऐसे में लेखापरीखा व्यवस्था प्रकृति की ओर से बोलने वाली वह आवाज बन जाती है, जो स्वयं प्रकृति नहीं बोल सकती।

**2. नैतिकता : नियमों के पार विवेक की यात्रा**

"नियम बताते हैं क्या करना है, पर नैतिकता बताती है—क्यों करना है;
जहाँ नियम समाप्त होते हैं, वहीं से विवेक की यात्रा शुरू होती है।"

नैतिकता किसी नियम पुस्तिका में लिखी हुई धारा या अनुच्छेद नहीं है। यह वह आंतरिक अनुशासन है, जो किसी व्यक्ति को तब भी सही मार्ग पर रखता है, जब कोई देखने वाला न हो।

"भीड़ में ईमानदार होना आसान है, पर एकांत में सही रहना—नैतिकता है।"

लेखापरीखा सेवा में नैतिकता का महत्व इसलिए और बढ़ जाता है, क्योंकि यहाँ कार्य का प्रभाव दूरगामी और व्यापक होता है। नियमों का पालन तो एक न्यूनतम अपेक्षा है, परंतु नैतिकता वह सूक्ष्म शक्ति है जो नियमों के

बीच सही और गलत, उचित और अनुचित, कानूनी और न्यायसंगत के बीच अंतर करना सिखाती है।

लेखापरीखा सेवा में कार्य करते हुए कई बार ऐसे क्षण आते हैं जब निर्णय केवल अभिलेखों, आँकड़ों या नियमों के यांत्रिक अनुपालन पर आधारित नहीं होते। वहाँ विवेक, निष्पक्षता और ईमानदारी की कसौटी भी लगती है। किसी भी प्रकार का दबाव, सुविधा या व्यक्तिगत लाभ—इन सबके बीच नैतिकता ही वह दीपक है जो सही दिशा दिखाता है।

लेखापरीक्षा प्रतिवेदन केवल एक अभिलेख नहीं होता। वह संसद, विधानमंडल और जनता के लिए उत्तरदायित्व का माध्यम होता है। उसकी निष्पक्षता पर लोकतंत्र की विश्वसनीयता टिकी होती है। ऐसे में किसी भी प्रकार का पक्षपात, दबाव या समझौता केवल व्यक्तिगत विफलता नहीं, बल्कि संस्थागत मूल्यों पर आघात होता है।

लेखापरीक्षा सेवा में नैतिकता केवल अपेक्षा नहीं, बल्कि संस्थागत पहचान है। यह वही अदृश्य शक्ति है, जो लेखापरीक्षा को एक तकनीकी प्रक्रिया से ऊपर उठाकर न्याय, पारदर्शिता और विश्वास का स्तंभ बनाती है।

### 3. सेवा : अदृश्य लेकिन अपरिहार्य

"सेवा वह नहीं जो दिखे तालियों में, सेवा वह है जो खामोशी से निभाई जाए;
जहाँ नाम न लिखा जाए पत्थरों पर, पर भविष्य सुरक्षित हो जाए।"

सेवा का अर्थ प्रायः प्रत्यक्ष सहायता, मानवीय संपर्क या दृश्य परोपकार से जोड़ा जाता है। किंतु लेखापरीक्षा सेवा में सेवा का स्वरूप अत्यंत सूक्ष्म, शांत और प्रायः अदृश्य होता है। यहाँ सेवा का अर्थ है—जनता के धन की रक्षा, सार्वजनिक संसाधनों के दुरुपयोग पर अंकुश और शासन प्रणाली में दीर्घकालिक सुधार हेतु ठोस सुझाव देना।

लेखापरीक्षा के माध्यम से जब किसी अनियमितता की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है, तो उसका उद्देश्य दंड देना नहीं, बल्कि व्यवस्था में सकारात्मक सुधार लाना होता है। यह सेवा आलोचना नहीं, संरचनात्मक सुधार की दिशा में एक कदम होती है।

कभी—कभी यह सेवा प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर नहीं होती है। न कोई धन्यवाद पत्र, न कोई प्रशंसा पत्र। परंतु जब वर्षों बाद किसी योजना का स्वरूप सुधरता है, या किसी नीति में पारदर्शिता आती है, तो वही लेखापरीक्षा की सच्ची सफलता एवं उपलब्धि होती है। भारतीय दर्शन भी इस निष्काम सेवा को सर्वोच्च मानता है—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन—
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।"
(श्रीमद्भगवद्गीता— २.४७

अर्थात—तेरा कर्म में ही अधिकार है उसके फल में कभी नहीं। तू कर्मफल का हेतु मत बन, अकर्म में तेरी प्रीति नहीं होनी चाहिए।

सेवा का यही मौन स्वरूप इस विभाग की पहचान है। जो कि शोर नहीं करती, पर उसका प्रभाव गहरा और स्थायी होता है।

### 4. सी.ए.जी. सेवाः संस्थागत मूल्यों की रीढ़

"लोकतंत्र का अर्थ केवल सत्ता नहीं, उत्तरदायित्व का संतुलन भी है;
और जहाँ उत्तरदायित्व की जाँच हो, वहीं सी.ए.जी. की उपस्थिति है।"

भारत के लोकतांत्रिक ढाँचे में सी.ए.जी. की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और विशिष्ट है। सी.ए.जी. की विश्वसनीयता किसी एक रिपोर्ट या अवलोकन से नहीं, बल्कि वर्षों से अर्जित उस भरोसे से बनी है, जो नैतिकता,

निष्पक्षता और पारदर्शिता जैसे मूल्यों पर आधारित है। यह संस्था सत्ता से नहीं, बल्कि संविधान से शक्ति ग्रहण करती है—और यही इसकी सबसे बड़ी नैतिक पूँजी है।

**"जवाबदेही लोकतंत्र की आधारशिला है और लेखापरीक्षा इसकी मूक रक्षक है।"**

इस संस्था में कार्य करना मात्र एक सरकारी पद धारण करना नहीं, बल्कि एक सतत नैतिक दायित्व का निर्वहन करना है। सी.ए.जी. के अधीन कार्यरत प्रत्येक अधिकारी और कर्मचारी केवल व्यक्ति नहीं, बल्कि संस्थागत मूल्यों का प्रतिनिधि होता है।

हमारा आचरण, हमारी निष्पक्षता, हमारा दृष्टिकोण और हमारी कार्य—संस्कृति—ये सभी मिलकर इस संवैधानिक संस्था की साख को आकार देते हैं। एक निष्पक्ष टिप्पणी, एक संतुलित अवलोकन और एक मर्यादित भाषा—संस्था की विश्वसनीयता को सुदृढ़ करती है; वहीं एक छोटा—सा समझौता, वर्षों की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचा सकता है।

इसी कारण सी.ए.जी. सेवा में पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता, नैतिक दृढ़ता और निष्काम सेवा—भाव कोई वैकल्पिक गुण नहीं, बल्कि अनिवार्य संस्थागत अपेक्षाएँ हैं। यहाँ कार्य करते हुए प्रत्येक निर्णय केवल वर्तमान को नहीं, बल्कि भविष्य की प्रशासनिक दिशा को भी प्रभावित करता है।

इस प्रकार, सी.ए.जी. सेवा केवल एक लेखापरीक्षा प्रणाली नहीं, बल्कि लोकतंत्र की मौन प्रहरी, संवैधानिक मूल्यों की रीढ़ और जनता के विश्वास की संरक्षक है। इसकी शक्ति शोर में नहीं, बल्कि सत्य, संयम और संस्थागत चरित्र में निहित है— और यही इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है।

**5. निष्कर्ष : आज का दायित्व, कल की विरासत**

एक लेखापरीक्षक के रूप में हमारा कार्य केवल फाइलों, प्रतिवेदनों या टिप्पणियों तक सीमित नहीं है अपितु आने वाली पीढ़ियों के लिए एक विरासत छोड़ने का माध्यम भी है। हमारी आज की निष्पक्षता, संवेदनशीलता और नैतिक दृढ़ता—कल के प्रशासनिक चरित्र को आकार देती है।

यदि हम अपने कार्य को केवल नौकरी, पद या औपचारिक दायित्व के रूप में देखें, तो उसका प्रभाव सीमित और क्षणिक रह जाएगा। किंतु जब हम अपने कार्य को नैतिक चेतना, पर्यावरणीय संवेदनशीलता और सेवादृभाव से जोड़ देते हैं, तब वही कार्य लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत करता है और समाज के लिए एक स्थायी दिशा—निर्देशक बन जाता है। यही सी.ए.जी. लेखापरीक्षा व्यवस्था की वास्तविक शक्ति है —, कम बोलना, सही देखना, निर्भीक होकर लिखना और दूरगामी प्रभाव छोड़ना।

लेखापरीक्षा की यह मौन शक्ति ही लोकतंत्र की सबसे बड़ी सुरक्षा है। जिसके बिना पारदर्शिता, जवाबदेही और जन—विश्वास की कल्पना अधूरी है। इसलिए एक लेखापरीक्षक के रूप में हमारा प्रत्येक दिन, प्रत्येक निर्णय और प्रत्येक शब्द—आज का दायित्व भी है और कल की विरासत भी।

उपर्युक्त लेख का उद्देश्य उस संवैधानिक दायित्व की ओर ध्यान आकृष्ट करना है, जिसके अंतर्गत लेखापरीक्षा व्यवस्था लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में संतुलन, उत्तरदायित्व और विश्वास की स्थापना करती है। यदि यह लेख पाठकों को लेखापरीक्षा के व्यापक सामाजिक एवं नैतिक आयामों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने हेतु प्रेरित कर सके, तो इसे इस प्रयास की सार्थकता माना जाएगा।

# गहनों से परे माँ

**आनंद कुमार झा**
सहायक लेखापरीक्षा अधिकारी

सुबह के आठ बज चुके थे। सूरज की किरणें जैसे धरा पर अपनी उग्रता का संकेत दे रही थीं—मानो वे कह रही हों कि आज का दिन केवल उजाले का नहीं, तपन का भी है। चैत्र मास में ही ज्येष्ठ जैसी गर्मी का अनुभव हो रहा था, जैसे मौसम ने बदलाव की गति कुछ अधिक ही तेज कर दी हो। वातावरण में एक विशेष प्रकार की गंभीरता थी और श्रीवत्स जी के घर में आज का दिन विशेष रूप से भावनात्मक और स्मृतिपूर्ण था। उनकी स्वर्गवासी माताजी की पंद्रहवीं पुण्यतिथि थी और इस अवसर पर उन्होंने बरसी पूजन का आयोजन किया था।

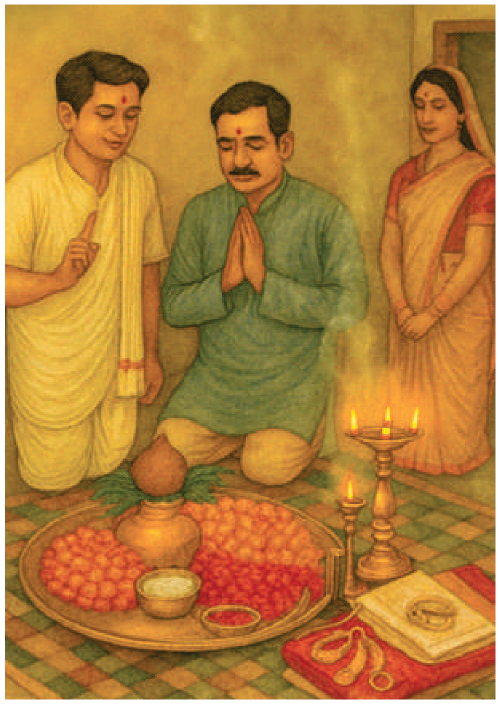

कुछ महीने पहले ही उनका इस शहर में तबादला हुआ था और इस नए परिवेश में वे स्थानीय परंपराओं से भली—भांति परिचित नहीं थे। अतः पंडित जी के निर्देशानुसार पूजन प्रक्रिया को पारंपरिक विधि से संपन्न करने की तैयारी की जा रही थी। घर में एक प्रकार की चहल—पहल थी, परंतु उसमें छाया भी थी— एक गहरी श्रद्धा की, स्मृति की और कहीं न कहीं एक मौन पीड़ा की।

पंडित जी समय से पूर्व ही आ पहुँचे थे। उन्होंने औपचारिक मुस्कान के साथ श्रीवत्स जी के आतिथ्य को स्वीकार किया और पूजा स्थल का निरीक्षण करते हुए विधि—विधान से संबंधित आवश्यक निर्देश देने लगे। श्रीवत्स जी और उनकी पत्नी श्रद्धा भाव से हर निर्देश का पालन कर रहे थे, मानो वे इस प्रक्रिया के माध्यम से अपनी माताजी के प्रति श्रद्धा और प्रेम को व्यक्त कर रहे हों।

पंडित जी ने आसन ग्रहण करते हुए कहा, 'श्रीवत्स जी, जो भी पूजन सामग्री आप लेकर आए हैं, कृपया दिखाएँ। और हाँ, यह पर्ची लीजिए—इसमें उन वस्तुओं की सूची है जो मैं अपने घर से लेकर आया हूँ। इसका मूल्य पहले दे दीजिए, तभी इसकी भेंट स्वीकार होगी।'

श्रीवत्स जी ने कृतज्ञता भाव से पंडित जी की हथेली पर रुपये रखते हुए कहा, ''महाराज जी, यह तो आपका बड़प्पन है। नहीं तो मुझे तो विधि—विधान की विशेष समझ नहीं।'' फिर उन्होंने बाजार से लाए दो झोले में भरे वस्त्र, पीतल पात्र, पुष्प, धूप, दीप और अन्य पूजन सामग्री पंडित जी के सामने रख दी।

पंडित जी ने समस्त सामग्री की सराहना की, परंतु तुरंत ही गंभीर मुद्रा में जैसे किसी अधूरे बिंदु पर रुकते हुए बोले—, 'श्रृंगार प्रसाधन सामग्री तो ठीक है, लेकिन संभवतः मैं कहना भूल गया कि स्वर्गवासी माताजी के लिए समग्र आभूषण भी आवश्यक हैं।'

यह सुनते ही श्रीवत्स जी के चेहरे पर क्षण भर के लिए असमंजस उतर आया। पत्नी की ओर देखा–जैसे बिना शब्दों के पूछ रहे हों: अब और? मन में एक गणना–सी चलने लगी–पहले ही खर्च अपेक्षा से अधिक हो चुका था और अब आभूषण भी?

उनके भावों को भाँपते हुए पंडित जी उन्हें समझाने के अंदाज में कहा,

"देखिए, स्त्रियों के लिए आभूषण अत्यंत प्रिय होते हैं। आभूषणों के बिना पूजन अधूरा माना जाता है।"

फिर उन्होंने न्यूनतम की सीमा भी स्पष्ट कर दी– "सारा नहीं, तो कम से कम चाँदी की पायल, बिछिया, और सोने की पतली–सी माला व नथुनी तो आवश्यक हैं। माताजी अत्यंत प्रसन्न होंगी। आप बाजार जाकर जल्दी से ले आइए। तब तक मैं फलाहार करके सामग्री व्यवस्थित कर लेता हूँ।"

**स्मृतियों की यात्रा**

ज्यों–ज्यों सूरज आसमान में ऊपर चढ़ता जा रहा था, पूजा का समय भी बीतता जा रहा था। अतः श्रीवत्स जी ने समय की नजाकत को समझते हुए स्कूटर की चाबी उठाई और यथासंभव तेजी से बाजार की ओर निकल पड़े। बाजार की ओर जाते हुए रास्ते भर श्रीवत्स जी के मन पर स्मृतियाँ हावी होती चली गईं। माँ के साथ बिताए अनगिनत पल जैसे चलचित्र की भाँति सामने आने लगे। उन्हें याद आया जैसे–जैसे वे बड़े होते गए, माँ के शरीर से गहने कम होते चले गए। एक दिन उन्होंने माँ को पिताजी से कहते सुना था– "बिक जाने दीजिए मेरा गहना। मेरा बेटा ही तो मेरा गहना है। वह जब अपने पैरों पर खड़ा हो जाएगा, तो फिर किस बात की कमी रहेगी? सब कुछ वापस आ जाएगा।"

यह स्मृति उनकी आँखों को नम कर गई। उन्होंने मन ही मन में संकल्प लिया था कि जब वे अपने पैरों पर खड़े होंगे, तो सबसे पहले माँ के लिए गहने लाएँगे। लेकिन नियति को कुछ और ही स्वीकार था। सरकारी सेवा में नियुक्ति के कुछ ही महीनों बाद ही माँ बिना किसी गहने के इस संसार से विदा हो गईं। यह अधूरापन, यह बेबसी–आज भी उनके हृदय में टीस बनकर जीवित थी।

आज जब वे माँ के श्राद्ध–कर्म के लिए गहने खरीदने निकले थे, तो उन्हें लगा मानो यह अवसर उन्हें माँ के प्रति अपने अधूरे कर्तव्य को निभाने का एक माध्यम दे रहा हो। इस भावना ने उनके मन में खर्च की पीड़ा को कुछ कम कर दिया और उन्हें एक गहरी आत्मिक शांति का अनुभव हुआ।

घर लौटकर पूजन विधि प्रारंभ हुई। विधिवत मंत्रोच्चार, सामग्री अर्पण सहित परंपरागत श्राद्ध पूजन का आयोजन हुआ। वातावरण में एक आध्यात्मिक ऊर्जा व्याप्त हो गई थी, परंतु पूजन के दौरान श्रीवत्स जी के मन में आस्था और तर्क के बीच कई प्रश्न उठते रहे–क्या यह सब वास्तव में आवश्यक है? क्या परंपरा के नाम पर हम कुछ ऐसा कर रहे हैं जिसका वास्तविक अर्थ हम समझ नहीं पा रहे? क्या श्रद्धा का माप वस्तुओं से होता है? समग्र आयोजन माताजी के लिए है या व्यवस्था की पूर्णता के लिए?

पूजन के बाद पंडित जी ने दक्षिणा ग्रहण की और सहज भाव से बोले, 'अब देखिए, पूजन तो समस्त विधि विधान से संपन्न हुआ, लेकिन परंपरागत रूप से ब्राह्मण भोजन भी होना चाहिए। यदि आप स्वयं आयोजन कर रहे हों तो ठीक है अन्यथा इस निमित्त मुझे उचित मूल्य अर्पित कर दें, जिससे मैं आपकी ओर से ब्राह्मण भोजन आयोजित करवा दूँगा।'

श्रीवत्स जी इस प्रक्रिया से अनभिज्ञ थे। उन्होंने श्रद्धा भाव से पूछा, 'पंडित जी, कितने ब्राह्मणों का भोजन आवश्यक होगा?'

पंडित जी बोले, "वैसे तो यह श्रद्धा और सामर्थ्य पर निर्भर करता है, परंतु शास्त्रानुसार कम से कम ग्यारह ब्राह्मणों का भोजन और उनके लिए उचित दक्षिणा आवश्यक है।"

श्रीवत्स जी का इशारा पाकर उनकी पत्नी ने फिर से मन में एक गणना–सी की और अलमारी से पैसे निकालकर पंडित जी को समर्पित कर दिए। घर में एक बार फिर मौन छा गया–एक ऐसा मौन जो केवल शब्दों की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि विचारों की गहराई एवं वातावारण में पसरी असहजता का संकेत था और जिसमें कोई विरोध नहीं था, पर पूर्ण सहमति भी नहीं।

धुएँ में घुलते प्रश्न

पूजन के अंतिम चरण में हवन शुरू हुआ। मंत्रों की गूँज और धुएँ व सुगंध से पूरा कमरा भर गया। जैसे–जैसे धुआँ गहराता गया, वैसे–वैसे श्रीवत्स जी के मन में उठते सवालों की धुंध भी गहराती गयी।

शाम होने से पहले संपूर्ण कार्य संपन्न हुआ। पंडित जी विदा होने लगे और बोले, 'गहने, कपड़े और मूल्यवान वस्तुएँ मुझे एक बैग में भरकर दे दीजिए, जो मैं अपने साथ ले जाऊँगा। बाकी भारी सामग्री आप अपनी सुविधानुसार मेरे घर पहुँचा दीजिएगा।'

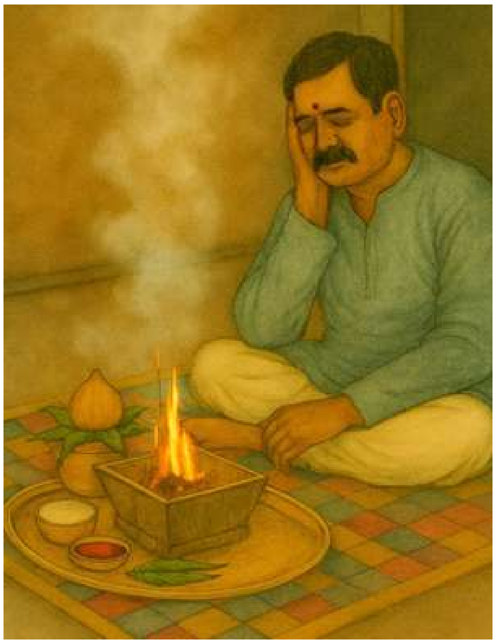

पंडित जी चले गए। घर में हवन का धुआँ तो धीरे–धीरे छँटने लगा, लेकिन श्रीवत्स जी के मन में उठे सवालों की धुंध और गहराती गयी। क्या यह सब कर्मकांड वास्तव में आवश्यक था? क्या अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता की अभिव्यक्ति का यही तरीका उचित है? जो माँ जीवन भर त्याग में जीती रहीं, क्या उन्हें मृत्यु के बाद वस्तुओं की आवश्यकता है? क्या श्रद्धा का अर्थ देना है–या समझना? क्या परंपरा का पालन आँख मूँदकर करना ही आस्था है? क्या वह प्रक्रिया वास्तव में श्रद्धा से प्रेरित है या किसी स्वार्थ से? उनके अंदर आस्था, तार्किकता और व्यावहारिकता के अंतर्द्वंद्व से उठे प्रश्नों ने मन को झकझोर दिया।

पूजन संपन्न हो गया था। पर श्रीवत्स जी को लगा– माँ को याद करने के लिए जो सबसे आवश्यक था, वह सूची में कहीं नहीं था।

माँ को गहनों की नहीं, एक सच्ची स्मृति की आवश्यकता थी– और शायद, एक ऐसे बेटे की, जो किसी जरूरतमंद की आँखों में वही चमक लौटा सके जो माँ के चेहरे पर कभी बिना गहनों के हुआ करती थी।

हवन समाप्त हो चुका था, पर आत्मा में उठे विचारों का हवन अभी शेष था।

उठे प्रश्नों का धुआँ अब भी बाकी था...

# मेरी पहली कमाई

**अवनी जैन**
लेखापरीक्षक

"मेरी पहली कमाई" – यह सिर्फ एक याद नहीं, बल्कि मेरे जीवन का एक ऐसा अध्याय है जिसने मुझे भीतर से बदल दिया। जब भी मैं उस समय को याद करती हूँ, तो मन गर्व, कृतज्ञता और भावुकता से भर जाता है। पहली सैलरी का अनुभव सच में अलग होता है क्योंकि उसमें मेहनत की मिठास होती है, जिम्मेदारी का एहसास होता है और अपने लोगों के लिए कुछ करने की सच्ची खुशी होती है।

बचपन से घर में यही सीखा कि मेहनत ही इंसान की असली पहचान होती है। पापा हमेशा कहते थे कि "अपनी कमाई का पहला रुपया सबसे कीमती होता है।" तब शायद उस बात की गहराई समझ नहीं आती थी, लेकिन जब खुद कमाने का मौका मिला, तब हर शब्द का मतलब समझ में आया।

पढ़ाई पूरी करने के बाद जब मुझे मेरी पहली नौकरी मिली, तो मन में बहुत उत्साह था। नया ऑफिस, नए लोग, नई जिम्मेदारियाँ – सब कुछ मेरे लिए एक नई दुनिया जैसा था। शुरुआत में थोड़ा डर भी लगा, लेकिन मैंने खुद से वादा किया कि हर काम पूरी ईमानदारी से करूँगी। पहला महीना सीखने और खुद को साबित करने में निकल गया। कभी काम ज्यादा होता, कभी थकान महसूस होती, लेकिन सैलरी वाले दिन का ख्याल मन में ऊर्जा भर देता था।

और फिर वो दिन आया – मेरी पहली सैलरी अकाउंट में आई। मोबाइल पर मैसेज देखकर कुछ पल के लिए मैं चुप रह गई। वो रकम भले ही बहुत बड़ी नहीं थी, लेकिन मेरे लिए उसका महत्व शब्दों से परे था। ऐसा लगा जैसे मैंने जिंदगी की पहली सीढ़ी चढ़ ली हो।

घर आकर सबसे पहले मैंने मम्मी–पापा को बताया। उनकी आँखों में जो गर्व और खुशी थी, वही मेरी असली कमाई थी। मैंने पहले से ही तय कर लिया था कि अपनी पहली सैलरी से सबसे पहले मम्मी के लिए कुछ खरीदूँगी। मम्मी को साड़ी पहनना बहुत पसंद है, लेकिन वो अक्सर अपनी पसंद को टाल देती थीं। मैं उन्हें बाजार लेकर गई और कहा कि आज आप बिना सोचे अपनी पसंद की साड़ी लीजिए। जब मैंने वो साड़ी अपनी पहली सैलरी से खरीदी, तो उनके चेहरे की मुस्कान मेरे लिए सबसे बड़ा इनाम थी।

मेरी दो बहनें हैं। दोनों ने हमेशा मेरा साथ दिया है। मैंने सोचा कि उनके लिए भी कुछ खास करूँ। पहली सैलरी के बाद मैंने हर महीने थोड़ी–थोड़ी बचत करनी शुरू की। लगभग छह महीने तक मैंने अपनी जरूरतों को थोड़ा कम किया और नियमित बचत की। छह महीने बाद मैंने दोनों बहनों के लिए चेन खरीदी।

जब मैंने उन्हें वो गिफ्ट दिया, तो उनकी खुशी देखकर मेरी सारी मेहनत सफल लगने लगी। उस पल मुझे एहसास हुआ कि कमाई का असली आनंद अपनों के साथ बाँटने में है।

लेकिन मेरी पहली सैलरी का एक और हिस्सा मेरे लिए बहुत खास था। बचपन से घर में यह सिखाया गया था कि कमाई का कुछ हिस्सा दान करना चाहिए। इसलिए मैंने अपनी पहली सैलरी में से कुछ राशि मंदिर में दान की और कुछ गौशाला में भी दी। मंदिर में दान करते समय मैंने मन ही मन भगवान का धन्यवाद किया कि उन्होंने मुझे इस योग्य बनाया। गौशाला में दान करते हुए मन में एक अलग ही शांति का अनुभव हुआ। लगा कि मेरी कमाई का एक हिस्सा सही जगह लगा है।

उस दिन मुझे समझ आया कि पैसा सिर्फ खर्च करने या बचाने के लिए नहीं होता, बल्कि उसका सही उपयोग करना भी जरूरी है। दान देने से जो सुकून मिला, वह किसी भी खरीदारी से बड़ा था। मुझे लगा कि मेरी पहली कमाई सच में पवित्र हो गई है।

इस पूरे अनुभव ने मुझे बहुत कुछ सिखाया। सबसे पहले, मेहनत का महत्व। अब जब भी मैं कोई रुपया खर्च करती हूँ, तो उसकी कीमत समझ में आती है। दूसरा, बचत का महत्व। अगर मैं हर महीने थोड़ा–थोड़ा न बचाती, तो शायद बहनों के लिए वो चेन न खरीद पाती। और तीसरा, बाँटने का महत्व – चाहे परिवार के साथ खुशी बाँटना हो या समाज के लिए कुछ करना।

मेरी पहली कमाई ने मुझे आत्मनिर्भर होने का आत्मविश्वास दिया। अब मुझे लगता है कि मैं अपने परिवार के लिए कुछ कर सकती हूँ, उनके सपनों में हाथ बँटा सकती हूँ। उस दिन से लेकर आज तक, हर सैलरी मेरे लिए खास होती है, लेकिन पहली सैलरी की बात ही अलग है।

आज भी जब मम्मी वो साड़ी पहनती हैं, जब मेरी बहनें वो चेन पहनकर मुस्कुराती हैं, और जब मैं मंदिर या गौशाला के पास से गुजरती हूँ, तो मन में वही पहली कमाई वाली खुशी ताजा हो जाती है।

सच कहूँ तो मेरी पहली कमाई ने मुझे सिर्फ पैसे नहीं दिए, उसने मुझे जिम्मेदारी, संवेदनशीलता और कृतज्ञता सिखाई। वह दिन मेरे जीवन की सबसे सुंदर यादों में से एक है – और शायद हमेशा रहेगा।

# टीमवर्क: सफलता की कुंजी

**प्रवीण कुमार श्रीवास्तव**
सहायक लेखापरीक्षा अधिकारी

वर्तमान समय में आज के कार्यस्थल में शायद ही कोई ऐसा काम हो जो अकेले पूरा किया जा सके। परियोजनाएँ जटिल होती जा रही हैं, जिम्मेदारियाँ बढ़ती जा रही हैं और अपेक्षाएँ लगातार ऊँची हो रही हैं। ऐसे समय में टीमवर्क केवल एक कार्यशैली नहीं, बल्कि सफलता की बुनियाद बन चुका है। जब अलग–अलग सोच, अनुभव और क्षमताएँ एक लक्ष्य के लिए साथ आती हैं, तब न केवल काम आसान होता है, बल्कि व्यक्ति स्वयं भी भीतर से विकसित होता है। कार्यस्थल पर टीम के साथ काम करते हुए हमें कई ऐसे जीवन–पाठ मिलते हैं, जो केवल पेशेवर जीवन ही नहीं, बल्कि व्यक्तिगत जीवन को भी समृद्ध करते हैं।

टीमवर्क हमें सबसे पहला पाठ यही सिखाता है कि सफलता अकेले की नहीं होती। कार्यस्थल पर कदम रखते ही हमें समझ आने लगता है कि हमारा काम दूसरों के काम से जुड़ा हुआ है। एक व्यक्ति की छोटी सी चूक पूरी टीम के प्रयास को प्रभावित कर सकती है और एक व्यक्ति की ईमानदार मेहनत पूरी टीम को आगे बढ़ा सकती है।

यह "मैं" से "हम" की यात्रा हमें अहंकार से बाहर निकालती है और सहयोग की भावना विकसित करती है। हम सीखते हैं कि व्यक्तिगत प्रशंसा से अधिक महत्वपूर्ण सामूहिक उपलब्धि होती है। यह सोच न केवल हमें बेहतर कर्मचारी बनाती है, बल्कि अधिक संवेदनशील इंसान भी बनाती है।

हर टीम अलग–अलग पृष्ठभूमि, उम्र, विचारधारा और अनुभव के लोगों से मिलकर बनती है। शुरू–शुरू में यह विविधता चुनौती लग सकती है, क्योंकि हर व्यक्ति का काम करने का तरीका और सोचने का दृष्टिकोण अलग होता है। लेकिन समय के साथ हमें एहसास होता है कि यही विविधता टीम की सबसे बड़ी ताकत है।

कोई योजना बनाने में माहिर होता है, कोई क्रियान्वयन में, कोई संवाद में और कोई समस्याओं के समाधान में। ये सभी क्षमताएँ जब एक साथ मिलती हैं, तब टीम अधिक रचनात्मक और प्रभावी बनती है। मैंने 18 वर्ष से अधिक के अपने सहायक लेखा परीक्षा अधिकारी के कार्यकाल में यह अनुभव किया है कि यदि आपकी टीम में सामंजस्य और जिम्मेदारी की भावना है तो वो आपको किसी भी परिस्थिति में निराश नहीं होने देगी।

टीमवर्क का मूल आधार संवाद है। बिना स्पष्ट और सम्मानजनक संवाद के कोई भी टीम लंबे समय तक प्रभावी नहीं रह सकती। कार्यस्थल पर टीम में काम करते हुए हम सीखते हैं कि अपनी बात कैसे रखें, दूसरों की बात कैसे सुनें और मतभेदों को कैसे सुलझाएँ।

अच्छा संवाद केवल बोलने का नाम नहीं है, बल्कि ध्यान से सुनने, भावनाओं को समझने और समय पर प्रतिक्रिया देने का भी नाम है। टीमवर्क हमें सिखाता है कि सही शब्द कई समस्याओं को जन्म लेने से पहले ही समाप्त कर सकते हैं।

जब हम एक टीम के रूप में कार्य करते हैं तो काम करते समय हर चीज हमारी इच्छा के अनुसार नहीं होती। कभी कोई समय पर काम पूरा नहीं करता, कभी किसी की कार्यशैली हमें परेशान करती है, तो कभी निर्णयों पर मतभेद हो जाते हैं। ऐसे क्षणों में टीमवर्क हमें धैर्य रखना सिखाता है।

हम सीखते हैं कि हर व्यक्ति हमारी तरह नहीं सोच सकता और यही स्वाभाविक है। सहनशीलता हमें अधिक परिपक्व बनाती है और हमें यह समझ देती है कि संबंध निभाने के लिए केवल योग्यता नहीं, बल्कि संवेदनशीलता भी आवश्यक है।

टीमवर्क हमें यह महत्वपूर्ण पाठ भी सिखाता है कि नेतृत्व केवल पद से नहीं, बल्कि व्यवहार से पहचाना जाता है। कई बार टीम में कोई ऐसा व्यक्ति होता है जो आधिकारिक रूप से लीडर नहीं होता, फिर भी उसकी सकारात्मक सोच, सहयोगी रवैया और जिम्मेदारी लेने की आदत उसे स्वाभाविक नेता बना देती है।

टीम में काम करते हुए हम सीखते हैं कि नेतृत्व का अर्थ आदेश देना नहीं, बल्कि मार्गदर्शन करना, सुनना, प्रेरित करना और कठिन समय में टीम के साथ खड़े रहना है।

एक समूह में कार्य करना हमें जिम्मेदार बनाता है। जब हम जानते हैं कि हमारा काम दूसरों के काम को प्रभावित करेगा, तो हम अधिक सजग हो जाते हैं। हम समय पर काम पूरा करने, गुणवत्ता बनाए रखने और अपनी गलतियों को स्वीकार करने का महत्व समझते हैं।

टीम में जवाबदेही केवल अपने वरिष्ठों के प्रति नहीं, बल्कि अपने सहकर्मियों के प्रति भी होती है। यह भावना हमें ईमानदार और भरोसेमंद बनाती है। कोई भी टीम, हमेशा सफल नहीं होती। कभी परियोजना असफल हो जाती है, कभी लक्ष्य पूरे नहीं होते और कभी प्रयास अपेक्षित परिणाम नहीं दे पाते। पर इन सबसे यह सीख मिलती है कि असफलता को व्यक्तिगत अपमान नहीं, बल्कि सामूहिक सीख के रूप में देखना चाहिए।

जब टीम मिलकर गलतियों का विश्लेषण करती है और समाधान खोजती है, तब हर सदस्य मानसिक रूप से मजबूत होता है। यह प्रक्रिया हमें हार मानना नहीं, बल्कि बेहतर बनना सिखाती है।

टीमवर्क विश्वास पर टिका होता है। जब हमें भरोसा होता है कि हमारी टीम हमारा साथ देगी, तब हम नए विचार रखने का साहस करते हैं और कठिन जिम्मेदारियाँ उठाने से नहीं डरते।

विश्वास का वातावरण कर्मचारियों को सुरक्षित महसूस कराता है। वे बिना डर के सवाल पूछते हैं, सुझाव देते हैं और गलतियों को स्वीकार करते हैं। यही विश्वास किसी साधारण समूह को सशक्त टीम में बदल देता है।

टीम में काम करते हुए हम केवल पेशेवर कौशल ही नहीं, बल्कि भावनात्मक बुद्धिमत्ता भी विकसित करते हैं।

हम दूसरों की भावनाओं को समझना, अपने गुस्से को नियंत्रित करना, तनाव में संतुलन बनाए रखना और संवेदनशील परिस्थितियों में सही प्रतिक्रिया देना सीखते हैं। ये गुण न केवल कार्यस्थल पर, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं।

टीमवर्क का सबसे सुंदर पक्ष है – सामूहिक सफलता का आनंद। जब किसी कठिन लक्ष्य को मिलकर हासिल किया जाता है, तो उसकी खुशी व्यक्तिगत उपलब्धि से कहीं अधिक गहरी होती है। उस सफलता में हर संघर्ष, हर मतभेद और हर प्रयास शामिल होता है। यह आनंद हमें अगली चुनौतियों के लिए प्रेरित करता है और टीम के साथ हमारे भावनात्मक जुड़ाव को मजबूत करता है।

एक मजबूत टीम कार्यस्थल को केवल काम करने की जगह नहीं, बल्कि सीखने और विकसित होने का मंच बना देती है। जहाँ टीमवर्क होता है, वहाँ तनाव कम होता है, सहयोग बढ़ता है और समस्याएँ साझा की जाती हैं।

टीम संस्कृति कर्मचारियों को यह एहसास कराती है कि वे अकेले नहीं हैं। यह भावना मानसिक स्वास्थ्य, संतुष्टि और प्रतिबद्धता को बढ़ाती है।

कार्यस्थल पर टीमवर्क से सीखे गए पाठ जीवनभर हमारे साथ रहते हैं। सम्मान देना, मदद माँगना, मतभेद सुलझाना, जिम्मेदारी लेना, धैर्य रखना और सफलता को साझा करना।

ये सभी गुण हमें बेहतर पेशेवर ही नहीं, बल्कि बेहतर इंसान बनाते हैं। टीमवर्क केवल लक्ष्य प्राप्त करने का माध्यम नहीं है, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया है। यह हमें जोड़ता है, तोड़ता है, सिखाता है और फिर से गढ़ता है। कार्यस्थल पर एक अच्छी टीम हमें यह एहसास दिलाती है कि हम जितने अकेले मजबूत हैं, उससे कहीं अधिक साथ मिलकर शक्तिशाली हैं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि टीमवर्क हमें काम करना नहीं, बल्कि साथ जीना सिखाता है। क्योंकि बड़े सपने अकेले देखे जा सकते हैं, लेकिन उन्हें पूरा करने के लिए एक टीम की आवश्यकता होती है।

# दिल तो बच्चा है जी !

**अर्चना मानव**
**सहायक लेखापरीक्षा अधिकारी**

दिल आज भी सपने बुनता है,
आँखों में शरारत रखता है।
उम्र ने चाहे सौ बहाने गढ़े,
दिल तो अब भी बच्चा लगता है।

कुर्सी ऊँची, फाइल भारी,
चेहरा गंभीर दिखता है।
पर भीतर झाँक कर देखो तो–
दिल तो बच्चा है जी,
दिल तो बच्चा ही रहता है।

एक सीधा–सा प्रश्न क्या आपने कभी ध्यान दिया है–कि जैसे ही कोई व्यक्ति "जिम्मेदार" कहलाने लगता है, उससे हँसना, सहज होना और भावुक होना धीरे–धीरे छिनने लगता है? घर में कहा जाता है–"अब तुम बड़े हो गए हो।" समाज कहता है–"अब तुम्हें समझदारी से चलना चाहिए।" कार्यालय कहता है– "यहाँ भावनाओं की कोई जगह नहीं।" और इन्हीं सब के बीच मन के भीतर बैठा एक नन्हा–सा बच्चा चुपचाप पूछता है– "क्या बड़ा होना इतना कठोर होना ही है?" सच यह है कि बचपन कहीं गया नहीं। उसे बस धीरे–धीरे कर्त्तव्यों के नीचे दबा दिया गया। बचपन में–छोटी–सी बात पर हँसी आ जाती थी किसी की डाँट पर आँखें भर आती थीं और जरा–सी प्रशंसा पर सीना चौड़ा हो जाता था आज वही व्यक्ति– हँसी को "हल्कापन" मानता है, संवेदना को "कमजोरी" और प्रशंसा को "अनावश्यक", पर भीतर का दिल अब भी वही पुराना सवाल पूछता है– "क्या मैं सच में इतना बदल गया हूँ?"

**अधिकारी : कुर्सी पर बैठते ही दिल को अवकाश**

**गंभीर चेहरा, शरारती दिल**

दफ्तर में अक्सर एक दृश्य देखने को मिलता है– चेहरा इतना गंभीर मानो अभी संविधान संशोधन होने वाला हो, कुर्सी इतनी सधी हुई मानो उसी पर बैठकर विश्व शांति तय की जाएगी, और भीतर का दिल? वह चुपचाप यह सोच रहा होता है कि "काश, आज चाय थोड़ी और अच्छी मिल जाती।" यही तो समस्या है। हम बाहर से जितने गंभीर दिखते हैं, अंदर से उतने ही साधारण, भावुक और कभी–कभी थोड़े शरारती भी होते हैं। लेकिन जैसे ही कोई यह कह दे कि "आप जिम्मेदार पद पर हैं," दिल को तुरंत चेतावनी दे दी जाती है– अब जरा सँभल

कर रहना। अधिकारी बनने के बाद व्यक्ति दो हिस्सों में बँट जाता है। एक हिस्सा कुर्सी पर बैठता है और दूसरा दिल के किसी कोने में।

कुर्सी वाला हिस्सा कहता है– "नियम के अनुसार यह संभव नहीं है।" दिल वाला हिस्सा फुसफुसाता है– "अरे यार, सामने वाला सच में परेशान लग रहा है।" कुर्सी जीत जाती है। दिल हार जाता है। लेकिन हार मानता नहीं। कभी किसी कर्मचारी के छोटे–से मजाक पर अधिकारी अचानक मुस्कुरा देता है, फिर तुरंत याद आता है कि "अरे, मैं तो मुस्कुरा रहा हूँ," और चेहरे पर फिर से वही प्रशासनिक गंभीरता लौट आती है।

अधिकारी बनते ही व्यक्ति से यह उम्मीद की जाती है कि वह नियमों का चलता–फिरता संस्करण बन जाए। उसके चेहरे पर गंभीरता स्थायी हो, भाषा नपी–तुली हो और व्यवहार इतना संतुलित हो कि उसमें इंसान कम व्यवस्था अधिक दिखाई दे।

अधिकारी भी भीतर से इंसान ही होता है, लेकिन उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह यह बात भूल जाए। उसे सिखाया जाता है कि सहानुभूति दिखाना कमजोरी है और सहजता बनाए रखना अनुशासनहीनता। परिणामस्वरूप, वह धीरे–धीरे अपने दिल को यह समझाने लगता है कि अब उसे चुप रहना चाहिए। अफसोस, जैसे ही हम किसी कुर्सी पर बैठते हैं, यह बच्चा या तो चुप करा दिया जाता है या फाइलों के नीचे दबा दिया जाता है। कभी–कभी लगता है कि दिल नहीं, कोई पुरानी सरकारी अलमारी है–जिसमें हँसी, शरारत, उत्साह और सपने सब "पुरालेख अनुभाग" में भेज दिए गए हैं। लेकिन सच यह है कि पद बड़ा हो सकता है, उम्र बढ़ सकती है, अनुभव भारी हो सकता है– पर दिल? वो तो अब भी बच्चा ही रहता है। बच्चा दिल क्या होता है? बच्चा दिल मतलब– छोटी–छोटी बातों में खुश हो जाना बिना लाभ–हानि सोचे सही काम करना, गलती हो जाए तो मुस्कुरा कर स्वीकार कर लेना और सबसे जरूरी– अब भी कुछ नया सीखने की चाह रखना। पर जैसे ही हम "अधिकारी" बनते हैं, दिल को आदेश जारी कर दिया जाता है– "अब तुम बच्चे नहीं रह सकते। मुस्कुराना गैर–जरूरी है। संवेदना वैकल्पिक है और इंसानियत... वो अगली मीटिंग में देखेंगे।"

**फाइल, फॉर्म और फॉर्मेलिटी के बीच दबे हुए बच्चे से संबंधित एक आम दफ्तर की दूसरी तस्वीर देखिए–**

सुबह 10 बजे चेहरा गंभीर, चाय ठंडी और दिल? वो अंदर से कह रहा है– "यार, आज तो बारिश है... काश खिड़की के पास बैठकर देख पाते।" लेकिन नहीं। क्योंकि अधिकारी को तो यह सोचना है कि "बारिश से फाइल गीली न हो जाए।"

बच्चा दिल कहता है–

"चलो किसी कर्मचारी की तारीफ कर दें।"

प्रोफेशनल दिमाग बोलता है–

"ज्यादा सिर चढ़ जाएगा।"

यहीं से दिल और दिमाग के बीच कोल्ड वॉर शुरू हो जाती है।

जब अधिकारी भीतर से बच्चा होता है। आपने देखा होगा– कुछ अधिकारी ऐसे होते हैं जो–

नई पेन मिलते ही खुश हो जाते हैं अपनी कुर्सी पर नामपट्टिका देखकर मुस्कुराते हैं और छुट्टी के दिन भी ऑफिस की फोटो स्टेटस में लगाते हैं। बाहर से सख्त, अंदर से–"मम्मी, देखो... मैं बॉस बन गया!" असल में, हर अधिकारी के भीतर एक बच्चा छिपा होता है,जो बस यह चाहता है कि– उसे सुना जाए, उसे सम्मान मिले और कभी–कभी उसे खेलने दिया जाए।

**आजकल "प्रोफेशनल" शब्द का मतलब बना दिया गया है–**

भावना मत दिखाओ, गलती मत मानो और हमेशा सीरियस रहो, लेकिन सच्चाई यह है कि– जो अपने भीतर के बच्चे को जिंदा रखता है, वही सबसे अच्छा प्रोफेशनल बनता है क्योंकि– बच्चा सवाल पूछता है तो नवाचार होता है, बच्चा डरता नहीं तो जोखिम लेने की हिम्मत आती है, बच्चा सीखना चाहता है तो विकास होता है।

**वहीं दिल के बच्चे को मारने के नुकसान है जब हम अपने भीतर के बच्चे को दबा देते हैं–**

काम बोझ लगने लगता है, लोग "केस" दिखने लगते हैं, इंसान नहीं। सफलता भी फीकी लगती है और जीवन... बस एक रूटीन बन जाता है फिर हम कहते हैं–"पहले जैसा मजा नहीं रहा।" अरे साहब, मजा गया नहीं– हमने उसे बाहर निकाल दिया है।

वही अधिकारी, जो फाइलों में मानवीय मूल्यों पर हस्ताक्षर करता है, कई बार सामने खड़े व्यक्ति की आँखों में झाँककर उसकी बात सुनने से बचता है। भीतर का बच्चा तब भी कहना चाहता है कि सामने वाला भी कोई फाइल नहीं, एक इंसान है, लेकिन पद का बोझ उस आवाज को दबा देता है।

**महिलाएँ: दिल हँसना चाहता है, समाज समझदारी माँगता है**

महिला से समाज की अपेक्षाएँ इतनी अधिक होती हैं कि अगर वह जरा–सी देर चुप बैठ जाए तो लोग पूछ लेते हैं– "सब ठीक तो है?" अगर वह हँस दे तो कहा जाता है– "बहुत हल्की हो गई है।" अगर गंभीर रहे तो– "कुछ ज्यादा ही सख्त है।" महिला का दिल कई बार बस इतना चाहता है कि वह बिना किसी भूमिका के थोड़ी देर इंसान बनकर रहे। न आदर्श, न उदाहरण, बस एक साधारण मनुष्य। लेकिन दिल का बच्चा हर भूमिका के बीच अपना मौका ढूँढ ही लेता है–कभी पुराने गाने सुनकर, कभी बच्चों की नकल उतारकर, और कभी खुद पर ही हँसकर।

महिला से समाज हमेशा यह अपेक्षा करता है कि वह हर परिस्थिति में समझदारी दिखाए। घर में उससे त्याग की उम्मीद की जाती है, कार्यस्थल पर संतुलन की और समाज में आदर्श बनने की। इन सबके बीच महिला का दिल कब थक जाता है, यह शायद ही कोई पूछता है।

महिला का दिल भी कभी बच्चा बनना चाहता है, बिना अपराध–बोध के हँसना चाहता है, बिना सफाई दिए थकान स्वीकार करना चाहता है। लेकिन उसे बार–बार यह याद दिलाया जाता है कि उसे मजबूत रहना है, क्योंकि कमजोर होने की अनुमति उसके पास नहीं है।

यह एक तीखा सत्य है कि महिला के भीतर का बच्चा सबसे अधिक अनुशासित कर दिया जाता है, क्योंकि उससे अपेक्षा की जाती है कि वह हर भूमिका में परिपूर्ण हो। लेकिन इस परिपूर्णता की कीमत अक्सर उसकी सहजता चुकाती है।

**क्या संवेदनशील होना अपराध है?**

यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि जिम्मेदारी निभाई जाए या नहीं। प्रश्न यह है कि क्या जिम्मेदारी निभाने के लिए दिल को कठोर बनाना आवश्यक है? क्या पद, भूमिका या आदर्श की रक्षा के लिए संवेदनशीलता का त्याग अनिवार्य है?

हमने एक ऐसी व्यवस्था बना ली है, जहाँ हँसता हुआ व्यक्ति हल्का समझा जाता है और संवेदनशील व्यक्ति अव्यावहारिक। यही वह सोच है, जो धीरे–धीरे इंसानों को केवल भूमिकाओं में बदल देती है।

**दिल का बच्चा जिंदा कैसे रखें?**

1. कभी–कभी खुद पर हँस लीजिए

गलती हो जाए–"ठीक है, सीख ली। "बच्चे भी गिरते हैं, पर चलना नहीं छोड़ते।

2. छोटी खुशियों को 'अनऑफिशियल अप्रूवल' दें

अच्छी चाय, एक तारीफ या किसी की मदद। इनका कोई सर्कुलर नहीं आता, पर असर बहुत गहरा होता है।

3. सुनिए–सच में सुनिए

बच्चा दिल सुनता है, सिर्फ जवाब देने के लिए नहीं।

4. कभी–कभी 'सर' नहीं, इंसान बनिए

यकीन मानिए, सम्मान कम नहीं होगा–बढ़ेगा। एक सच्ची सीख जो अधिकारी, डॉक्टर, शिक्षक, इंजीनियर या प्रोफेशनल–अपने भीतर के बच्चे को जिंदा रखते हैं, वही सबसे यादगार बनते हैं, बाकी लोग? वो बस फाइलों में दर्ज रह जाते हैं।

अंत में...

तो अगली बार जब कोई कहे– "दिल तो बच्चा है जी"

तो मुस्कुरा कर कहिए–

"हाँ, और शुक्र है कि अब भी जिंदा है।"

**क्योंकि**

जिस दिन दिल बूढ़ा हो गया,
उस दिन पद, पैसा और प्रतिष्ठा–
सब अर्थहीन हो जाएँगे।
दिल को बच्चा ही रहने दीजिए...
वही आपको इंसान बनाए रखेगा।

# दफ्तर के पाँच मौन शिक्षक

**सेहरिश फुज़ैल**
लेखापरीक्षक

हम सबने कभी न कभी यह सोचा है कि दफ्तर केवल काम निपटाने की जगह है—सुबह आना, फाइल खोलना, मीटिंग करना और शाम को लौट जाना। पर अगर थोड़ा ठहरकर देखें, तो समझ आता है कि दफ्तर सिर्फ काम करने की जगह नहीं बल्कि अपने आप में एक छोटा सा संसार है। एक ऐसा संसार, जहाँ हमें केवल इंसान ही नहीं, कई निर्जीव सी दिखने वाली चीजें भी जीवन भर काम आने वाली सीख दे जाती हैं। बस हमें जरूरत हैं उन्हें एक अलग नजरिये से देखने की। ये हमारे ऐसे गुरु हैं जो न भाषण देते हैं, न डाँटते हैं बस चुपचाप अपने ढंग से जीवन के पाठ पढ़ा जाते हैं।

आइए मिलते हैं दफ्तर के उन पाँच मौन शिक्षकों से, जिनकी ओर हमारा ध्यान कम जाता है, पर जिनका योगदान सबसे ज्यादा होता है।

### 1. प्रिंटर – धैर्य का सबसे बड़ा गुरु

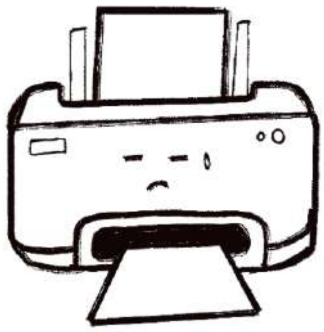

दफ्तर में सबसे ज्यादा भावनाएँ अगर किसी मशीन में होती हैं तो वह है—प्रिंटर। कभी स्याही खत्म, कभी कागज अटक गया, कभी नेटवर्क रूठ गया, फिर भी बेचारा चुपचाप काम में लगा रहता है। हम गुस्से में दो बार बटन दबा देते हैं, उस पर हाथ पटक देते हैं, लेकिन वह हमें सिखाता है धैर्य। प्रिंटर हमें सिखाता है कि—

- हर काम तुरंत नहीं होता
- व्यवस्था को समय देना पड़ता है
- गुस्सा समाधान नहीं लाता

जैसे प्रिंटर को सही कमांड, सही कागज और सही स्याही चाहिए, वैसे ही हमारे काम को भी सही प्रक्रिया चाहिए।

कई बार हम जीवन में भी "फास्ट प्रिंट" चाहते हैं—तुरंत तरक्की, तुरंत सफलता। पर प्रिंटर मुस्कराकर कहता है, "थोड़ा रुको, लाइन में आओ, सब ठीक छपेगा!"

### 2. फाइलें – अनुशासन की चलती–फिरती पाठशाला

मेज पर रखी फाइलें देखने में बस कागजों का ढेर लगती हैं, लेकिन असल में वही दफ्तर की याद्दाश्त हैं। हर फाइल अपने आप में किसी व्यक्ति की उम्मीद, किसी योजना की मेहनत और किसी निर्णय की कहानी समेटे रहती है।

फाइलें हमें सिखाती हैं—

- चीजों को क्रम में रखना
- तथ्यों का सम्मान करना
- आधा–अधूरा काम न छोड़ना

जिस दफ्तर में फाइलें बिखरी होती हैं, वहाँ काम भी भटक जाता है और जहाँ फाइलें सलीके से रहती हैं, वहाँ फैसले भी सलीके से जन्म लेते हैं। फाइलें चुपचाप बताती हैं कि अनुशासन कोई बोझ नहीं, बल्कि सुविधा है–ऐसी सुविधा जो काम को आसान बना देती है।

**3. चाय का गिलास – संवाद का सबसे गर्म कोना**

दफ्तर की सबसे लोकतांत्रिक जगह कौन–सी है? न मीटिंग हॉल, न केबिन–असल जवाब है चाय का कोना।

**यहीं पर–**

- नए कर्मचारी का डर टूटता है
- सीनियर का अनुभव खुलता है
- उलझी फाइलों के रास्ते निकलते हैं

चाय हमें सिखाती है कि काम केवल फाइलों से नहीं, रिश्तों से भी चलता है।

कई बार जो बात बैठक में घंटों हुई चर्चा के बाद भी नहीं सुलझ पाती, वह एक कप चाय के साथ दो मिनट में साफ हो जाती है। गरम चाय की प्याली दिमाग को जो ठंडक देती है, उसी सरल से पल में कई बड़े निर्णयों की शुरुआत हो जाती है। भाप उठाता गिलास मानो कहता है–
"थोड़ा ठहरो, सुनो, समझो... ठंडे दिमाग से फिर आगे बढ़ो।"

**4. बैठक का कार्यवृत्त – दफ्तर की सामूहिक स्मृति**

अगर कार्यवृत्त न हों तो दफ्तर की आधी बातें हवा में उड़ जाएँ। बैठक में लिए गए फैसले, तय की गई जिम्मेदारियाँ, अगली तारीखें–सब इन्हीं कागजों में साँस लेते हैं।

कार्यवृत्त हमें सिखाते हैं–

- बात को स्पष्ट लिखना
- वादे को काम में बदलना
- जवाबदेही से न डरना

यह सिर्फ कागज नहीं, दफ्तर का आईना होते हैं जो हमें हमारी जिम्मेदारी और कर्त्तव्यों से रूबरू कराते हैं। जो लिखा गया है, वही सच माना जाएगा–इसलिए शब्दों की जिम्मेदारी बहुत बड़ी होती है। कार्यवृत्त चुपचाप बताते हैं कि अच्छा काम वही है जिसका रिकॉर्ड हो, जिसकी दिशा तय हो।

**5. दफ्तर की इमारत – भरोसे की छत**

ईंट–पत्थर से बनी दफ्तर की इमारत जहाँ हम रोज आते हैं हमें अक्सर साधारण सी ही लगती है। पर इस साधारण सी इमारत को खास बनाते हैं यहाँ काम करने वाले हम और आप जैसे कर्मचारी। हर इंसान अलग, सोच अलग, काम करने का तरीका अलग और जिंदगी को देखने का नजरिया अलग। यही वह जगह है जहाँ–

- विचार योजनाओं में बदलते हैं
- नागरिकों की उम्मीदें फाइलों में ढलती हैं
- निर्णय समाज तक पहुँचते हैं

जिस तरह इंद्रधनुष के भिन्न रंग मिलकर एक अद्‌भुत सौंदर्य पैदा करते हैं, उसी तरह भिन्न विचारों का संगम दफ्तर को नई संभावनाओं से भर देता है। दफ्तर की इमारत हमें सिखाती है कि व्यवस्था किसी एक इंसान से नहीं, सामूहिक प्रयास से बनती है।

दफ्तर की इमारत केवल छत नहीं देती, पहचान भी देती है।

यहीं नए कर्मचारी का आत्मविश्वास जन्म लेता है, यहीं से सेवानिवृत्त होते समय यादों की गठरी बँधती है।

**काम से थोड़ा आगे की बात**

दफ्तर की दुनिया बाहर से भले गंभीर दिखे, पर भीतर अनगिनत कहानियाँ साँस लेती हैं।

हर प्रिंट हुआ पन्ना, हर व्यवस्थित फाइल, हर कप चाय और हर लिखा हुआ कार्यवृत्त–किसी न किसी इंसान की मेहनत की गवाही है।

हमारे दफ्तर में मौजूद ये छोटी–मोटी चीजें केवल काम पूरा करने के साधन भर नहीं हैं। ये चुपचाप हमें बहुत कुछ ऐसा सिखा जाती हैं, जो हमारे जीवन को देखने के नजरिये को हमेशा के लिए बदल देता है। अगर जरूरत है, तो बस इतना कि हम भागती दिनचर्या के बीच थोड़ा ठहरकर इन्हें ध्यान से सुनें। जिस दिन हम इन मौन शिक्षकों की भाषा समझ लेंगे, उस दिन दफ्तर केवल नौकरी की जगह नहीं, बल्कि सीखने और सँवरने का एक सुंदर विद्यालय बन जाएगा।

दफ्तर सिर्फ काम करने की जगह नहीं, हमारी जिंदगी का वो अहम हिस्सा है जहाँ हम हमारी दिनचर्या का अधिकतम हिस्सा बिताते हैं– अगर हम हमारे आस पास मौजूद मौन शिक्षकों की बात सुन लें, तो न केवल हमारा काम बेहतर होगा, बल्कि हम खुद भी बेहतर इंसान बनेंगे।

क्योंकि असली सीख अक्सर शोर में नहीं–खामोशियों में छिपी होती है!

तो अगली बार जब आप दफ्तर की ओर जाएँ, भारी मन की जगह, चेहरे पर एक मुस्कान के साथ जाकर देखिए.. क्या पता जब आप दफ्तर की ओर मुस्कुराएँ तो दफ्तर भी थोड़ा आपकी ओर मुस्कुरा दे!

# चलो, शब्द नहीं चुप्पी सुनी जाए

**स्वेता रविदास**
कनिष्ठ हिंदी अनुवादक

हम किसी को पूरा नहीं जानते, फिर भी कहते हैं– मैं जानता हूँ।

दिल की भाषा मौन में रहती, शब्दों को ही सब मानता हूँ॥

आँखें देख लें चेहरा सारा, मुस्कान पढ़ लें, हँसी पहचानें,
पर मन के भीतर जो अँधियारा, उस तक पहुँचने की राह न जानें।
खुद से छुपा जो डर बैठा है, खुद से टूटी जो बात कहीं,
जिस मन में मालिक खुद ना उतरे, उस मन को दूसरा क्या जाने?
इश्क कहे– मैं तुझे जानूँ, इश्क़ भी अक्सर भरम में है,
हँसी को दिल का हाल समझना सबसे पुराना वहम ये है।
पास रहे, पर कह न पाए, जो था मन में, मन में ही रह जाए
जानता है कोई समझेगा नहीं इसलिए तो अपनी व्यथा मशीनों के आगे दोहराए
माँ बोले– मैं सब जानूँ, बेटे की हर आदत, हर चाल,
पर क्या जाने रातों में, वह किस डर से होता है बेहाल?
कौन–सी बात जो कह न सका, कौन–सी चाह जो मर जाती है,
दिन में जो मजबूत दिखता है, रात वही टूट जाता है।
बाजारों में चलते चेहरे, हँसी सजी, आवाजें ऊँची,
भीतर कितनी टूटन होगी, किसे ख़बर, किसने यह पूछी?
एक आदमी रोज हँसता है, सब कहते– कितना खुशकिस्मत!
रात को छत से, चाँद से पूछे, "मुझसे ज्यादा कौन है तन्हा?"
एक लड़की चुप रहती है, लोग कहें– इसमें घमंड बहुत,
किसे पता उस चुप्पी के पीछे, कितने सवाल, कितनी टूट?

जिस दिन बोली, आवाज काँपी, शब्द भी साथ न दे पाए,
लोग हँसे– "नाटक करती है", दर्द वहीं पर मर जाए।
फाइलों के बीच झुके हुए लोग, मीटिंग, ईमेल और समय की दौड़,
हर मेज पर बैठा इंसान अपनी–अपनी सोच में लीन, कठोर।
कोई समय से पहले आ जाता है, कोई देर तक बैठा रहता है,
हम कहते– कितने काम का है, या कितना टालता रहता है।
कोई मीटिंग में कम बोलता है, तो ठप्पा लगा– इंटरेस्ट नहीं,
किसे पता, वह शब्दों से पहले सोच को पूरा तौलता हो कहीं।
कोई ज्यादा बोलने लगता है, तो कहते खुद को आगे रखता है,
यह न पूछें– शायद उसे अपनी बात कहने का डर लगता है।
अगर इस जीवन और कामकाज से कोई बात हमें लेनी है,
तो बस इतना ही काफी है– संवेदना को थोड़ी जगह देनी है।
"मैं जानता हूँ" कहने से पहले एक पल रुक कर देख लिया जाए,
शायद सामने वाला भी हो कोई अदृश्य बोझ उठाए।
हम किसी को पूरा नहीं जानते, यह हार नहीं, यह बोध है।
जहाँ काम से पहले इंसान दिखे, वहीं से बेहतर संसार की खोज है।

# दो साँसों की कहानी

**शिखा मलिक**
लेखापरीक्षक

**"एक साँस मिट्टी से आती है, दूसरी भीड़ से टकराकर। सवाल यह नहीं कि कौन शुद्ध है, सवाल यह है – किसमें हम जिंदा महसूस करते हैं।"**

### ➢ गाँव का सपना और शहर की थकान

आज की तेज रफ्तार जिंदगी में, जब शहर थकाने लगते हैं, तब बड़ी संख्या में लोग यह मानने लगे हैं कि सुकून का असली ठिकाना गाँव हैं। शहरों में रहने वाले कई लोग सप्ताहांत, छुट्टियों या सेवानिवृत्ति के बाद गाँव लौटने के सपने देखते हैं। गाँव एक सपना बनकर सामने आते हैं–हरियाली, खुला आकाश, मिट्टी की खुशबू और धीमा समय।

सोशल मीडिया पर यह सपना और चमकता है। लगता है मानो सुकून का स्थायी पता वहीं है। सोशल मीडिया पर गाँवों की हरियाली, कच्चे रास्ते, खुले आँगन, मिट्टी की खुशबू और शांत सुबहों की तस्वीरें साझा की जाती हैं, जो यह संदेश देती हैं कि गाँवों में जीवन सरल, स्वस्थ और तनाव–मुक्त होता है।

लेकिन यह कहानी अधूरी है, क्योंकि हर साँस के साथ एक अनुभव जुड़ा है, और हर अनुभव सबके लिए एक–सा नहीं होता।

### ➢ दृश्य एकः शहर – गुमनामी की आजादी

सुबह अलार्म से नहीं, मजबूरी से शुरू होती है। सड़कें भागती हैं, लोग बहते हैं। यहाँ कोई किसी को नहीं जानता और यही सबसे बड़ा परिचय है।

कोई नहीं पूछता–कहाँ जा रहे हो? क्यों जा रहे हो? किसके लिए जी रहे हो?

शहर सुनता नहीं, पर रोकता भी नहीं। यहाँ आजादी है–जेब में नहीं, पर खामोशी में। यही खामोशी कई लोगों को राहत देती है। शहर व्यक्ति को गुमनाम रहने की इजाजत देता है–अपनी असफलताओं, अपने फैसलों और अपने बदलावों के साथ।

यह आजादी अकेलेपन की कीमत पर मिलती है, लेकिन कई लोग यह कीमत चुकाने को तैयार होते हैं। शहरों की स्वतंत्रता अपने साथ कई चुनौतियाँ लेकर आती है–अकेलापन, भावनात्मक दूरी, प्रतिस्पर्धा और कभी–कभी असुरक्षा। वहाँ संबंध अक्सर स्वार्थ और सुविधा पर आधारित होते हैं।

### ➢ दृश्य दोः गाँव – सामूहिकता से निगरानी तक

यहाँ रास्ते कम हैं, पर आवाजें ज्यादा। आप घर से निकलते हैं और आपकी कहानी पहले ही बाहर पहुँच चुकी होती है।

पहचान क्या है–किसका बेटा, किसकी बेटी, किस जाति से, किस परिवार से। नाम से पहले–गोत्र, इच्छा से पहले–परंपरा, भविष्य से पहले–"लोग क्या कहेंगे"।

गाँव देखता है, जानता है, याद रखता है–कभी–कभी बहुत ज्यादा। वहाँ व्यक्ति अकेला नहीं होता; वह परिवार,

रिश्तेदारी, पड़ोस और समाज के घेरे में रहता है। यह सामूहिकता सुरक्षा देती है, संकट में लोग साथ खड़े होते हैं, दुख और सुख साझा होते हैं।

लेकिन यही सामूहिकता कई बार निगरानी बन जाती है। निजता धीरे–धीरे गल जाती है। किसी के घर आने–जाने का समय, पहनावा, बातचीत, रिश्ते और निर्णय–सब कुछ सार्वजनिक चर्चा का विषय बन सकता है। व्यक्ति को लगता है कि उसका जीवन उसका नहीं, बल्कि समाज की संपत्ति बन गया है। यह निरंतर दबाव मानसिक थकान पैदा करता है।

### ➢ स्त्रीः हर जगह सवाल, हर जगह डर

गाँव में–"इतनी देर क्यों?" शहर में–"अकेली क्यों?"

दोनों जगह डर है। फर्क सिर्फ इतना है–गाँव डर को संरक्षण के नाम पर ढक देता है, शहर डर को स्वतंत्रता के नाम पर खुला छोड़ देता है।

स्त्री हर जगह चलती है–पर हर जगह नापकर।

गाँव में आज भी स्त्री की स्वतंत्रता पर कई अदृश्य सीमाएँ मौजूद हैं। सुरक्षा के नाम पर नियंत्रण, परंपरा के नाम पर रोक और सम्मान के नाम पर निगरानी – ये सब स्त्री के जीवन का हिस्सा बन जाते हैं।

शहरों में रहने वाली कई महिलाएँ यह स्वीकार करती हैं कि वे वहाँ अधिक स्वतंत्र महसूस करती हैं, क्योंकि उन्हें हर समय किसी की अनुमति या स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती। यह विडंबना है कि जहाँ गाँव सुरक्षित माने जाते हैं, वहीं स्वतंत्रता सीमित हो जाती है और जहाँ शहर असुरक्षित कहे जाते हैं, वहीं आत्मनिर्णय की गुंजाइश अधिक होती है।

### ➢ युवाः दो समयों के बीच फँसा हुआ

युवा जब गाँव लौटता है, तो उसे बताया जाता है–"हमारे समय में ऐसा नहीं होता था।" और जब शहर जाता है, तो कोई नहीं पूछता–"तुम्हारा समय कैसा है?

आज की युवा पीढ़ी वैश्विक दुनिया से जुड़ी हुई है। उनके विचार, आकांक्षाएँ और जीवन–शैली पारंपरिक ढाँचों से अलग हैं। जब वे गाँव लौटते हैं, तो उन्हें लगता है कि समय वहीं ठहर गया है, जबकि वे स्वयं बदल चुके हैं।

उनकी सोच और समाज की अपेक्षाओं के बीच टकराव पैदा होता है। यह टकराव अपराध–बोध, असंतोष और दूरी का कारण बन जाता है। परिणामस्वरूप, वे गाँव को छोड़कर शहर में रहना अधिक सहज समझते हैं। युवा शहर में थकता है, पर गाँव में रुक नहीं पाता।

### ➢ सामूहिकता बनाम अकेलापन

गाँव में दुख साझा है, पर निर्णय नहीं। शहर में निर्णय अपना है, पर दुख अकेला।

एक जगह हाथ थामे जाते हैं, दूसरी जगह रास्ते।

शहरों में रहने वाले कई लोग एक प्रकार की अनामिता का अनुभव करते हैं। शहर में कोई यह नहीं पूछता कि आप कहाँ जा रहे हैं, किससे मिल रहे हैं या कैसे जी रहे हैं। यह गुमनामी कई लोगों के लिए भयावह नहीं, बल्कि मुक्तिदायक होती है।

अकेले कमरे में रहना, अपने समय का निर्णय स्वयं लेना, अपनी असफलताओं और प्रयोगों को चुपचाप जी लेना–ये सब शहरों में अधिक संभव हो पाता है। शहर व्यक्ति को यह आजादी देता है कि वह अपनी पहचान स्वयं गढ़ सके।

यह स्वतंत्रता विशेष रूप से उन लोगों के लिए महत्वपूर्ण हो जाती है जो सामाजिक रूढ़ियों से अलग जीवन जीना चाहते हैं। चाहे वह करियर का चुनाव हो, विवाह न करने का निर्णय, अलग जीवन–शैली अपनाना या अपने विचारों को खुलकर व्यक्त करना–गाँवों में ऐसे निर्णय अक्सर अस्वीकार कर दिए जाते हैं, जबकि शहरों में अस्वीकार का दबाव अपेक्षाकृत कम होता है।

- **घर: एक जगह नहीं, एक अनुमति**

घर वह जगह नहीं जहाँ दरवाजा खुलता है। घर वह जगह है जहाँ सवाल बंद हो जाते हैं।

किसी के लिए वह गाँव की चौपाल है, किसी के लिए शहर का एक कमरा–जहाँ कोई दरवाजा खटखटाता नहीं।

आज के समय में 'घर' की अवधारणा बदल चुकी है। घर अब केवल जन्मस्थान नहीं, बल्कि वह स्थान है जहाँ व्यक्ति स्वयं को स्वीकार किया हुआ महसूस करता है। स्वतंत्रता अब स्थान नहीं, अनुभव बन चुकी है। यदि व्यक्ति को लगता है कि वह हर समय देखे जाने और परखे जाने की स्थिति में है, तो वह स्थान चाहे कितना भी सुंदर क्यों न हो, उसे छोड़ना चाहेगा।

- **आजादी की परिभाषा और आखिरी सवाल**

आजादी खुला मैदान नहीं होती। आजादी वह पल है–जब कोई यह न पूछे कि आप सही हैं या नहीं।

शहर यह पल देता है, गाँव यह पल छीन भी सकता है और कभी–कभी उल्टा भी। असल अंतर जगह का नहीं, अनुभव का है।

कुछ लोग शहरों से थककर गाँव लौटते हैं और वहाँ जीवन का नया अर्थ खोजते हैं। उन्हें गाँवों का धीमा समय, गहरे रिश्ते और प्रकृति से जुड़ाव मानसिक शांति देता है। लेकिन वही धीमापन और निकटता कुछ लोगों के लिए घुटन बन जाती है।

अंततः यह स्वीकार करना आवश्यक है कि शांति, सुकून और स्वतंत्रता की परिभाषा हर व्यक्ति के लिए अलग होती है।

"गाँव बुरा नहीं, शहर अच्छा नहीं या शायद दोनों ही हम जैसे हैं–थोड़े सहायक, थोड़े थकाने वाले।

असल सवाल यह नहीं कि कहाँ रहना चाहिए। सवाल यह है–क्या हमें अपनी तरह से जीने दिया जा रहा है?

जिस दिन यह इजाजत मिल जाएगी, उस दिन गाँव और शहर–दोनों ही घर बन जाएँगे और गाँव एवं शहर के बीच यह दूरी केवल भौगोलिक रह जाएगी, मानसिक नहीं।"

# जीवन का चक्र

**अनन्य गुप्ता**
लेखापरीक्षक

यह बात कुछ साल पहले की है। मेरा एक बहुत करीबी इंसान अस्पताल में भर्ती था। पूरे 16 दिन वहाँ रहने के दौरान मेरे मन में कई ख्याल आए, जिन्हें आज मैं साझा करना चाहता हूँ।

पहले दिन अस्पताल में हर तरफ अफरा—तफरी थी। कोई किसी तरह बेड ढूँढ रहा था, कोई इलाज शुरू करवाने की कोशिश में था। हर कोई परेशान था। एक इंसान अपनी जिंदगी के लिए लड़ रहा होता है और कई लोग उसे बचाने की कोशिश में लगे होते हैं। जैसे—तैसे मरीज भर्ती होता है और फिर शुरू होता है अस्पताल का सफर।

वह अस्पताल हर तरह के लोगों से भरा हुआ था। कोई खुशियाँ लेकर लौट रहा था, तो कोई गहरा दुःख लेकर। कुछ चेहरों पर उम्मीद थी, तो कुछ पर मायूसी। इंसान बस भाग रहा है—कोई अपने सपनों के पीछे, तो कोई आने वाली सच्चाई से दूर।

हम सब एक बड़े भ्रम में जी रहे हैं। हमें लगता है कि हमारे पास बहुत वक्त है। हम अपनी खुशियाँ, अपनों के साथ बैठना, और प्यार जताना हमेशा "कल" पर टाल देते हैं। अभी करियर बनाना है, पैसे कमाने हैं, सेटल होना है—यही सोचते रहते हैं।

लेकिन अस्पताल में बिताए उन कुछ दिनों ने मुझे जीवन का कड़वा सच समझा दिया—कल का कोई भरोसा नहीं।

आईसीयू के बाहर खड़े किसी इंसान को यह याद नहीं रहता कि उसकी मीटिंग छूट रही है या उसकी सैलरी कितनी है। वहाँ सिर्फ एक ही चीज काम आती है—दुआ।

तभी समझ आया कि हम चीजों से प्यार करने लगे हैं और लोगों को इस्तेमाल कर रहे हैं, जबकि होना इसका उल्टा चाहिए था।

ये साँसें जैसे उधार की हैं, जो कभी भी वापस ली जा सकती हैं।

तो फिर यह घमंड किस बात का?

यह नफरत क्यों?

छोटी—छोटी बातों पर रिश्तों में दूरी क्यों?

जब मैं वहाँ बैंच पर बैठकर नश्वर शरीरों को देख रहा था, तब समझ आया कि जिसे हम नुकसान कहते हैं– जैसे पैसा खोना या नौकरी जाना–वो असली नुकसान नहीं है।

असली नुकसान तब होता है जब कोई अपना चला जाए और हम उसे यह भी न बता पाएँ कि वह हमारे लिए कितना अहम था।

उस बैंच पर बैठ कर एक ख्याल मेरे मन में आया था और वो कुछ ऐसा है–

'कुछ चेहरे हँसते, कुछ उदास नजर आए, कुछ उम्मीदों संग, कुछ अपनों के साये।
अंत भी यहीं है, आरंभ भी यहीं, बस साथ है अपना, यही तो सही।
क्या मोह, क्या माया, अपनों के लिए क्या ही है सब कुछ लुटाना।
सब कुछ छोड़कर इतनी छोटी हैं खुशियाँ, फिर निकलकर यहाँ से क्यों ढूंढते हैं खुशियाँ?
कोई ले गया यहाँ से जन्म लेकर, कोई बचा लिया अपनो को पुनर्जन्म देकर।
जो न कर सका ये दोनों काम, वो ले गया हर एक जख्म अपने नाम।''

# सादगी भरा जीवन ही सच्चा सुख

**शिव सिंह यादव**
लेखापरीक्षक

जब मैं अपने जीवन की लंबी यात्रा के पड़ावों पर ठहरकर पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो एक बात बहुत स्पष्ट दिखाई देती है—सुख कभी बाहरी चकाचौंध में नहीं था, वह तो हमेशा सादगी की शांत छाया में ही मिलता है। मैंने अपने जीवन में अभाव भी देखे, संघर्ष भी देखे, और धीरे–धीरे बढ़ती सुविधाएँ भी देखीं; परंतु जो संतोष उस समय मिला, जब जीवन सरल था, वह आज की भाग–दौड़ और दिखावे में बहुत कम दिखाई देता है। इसलिए अपने अनुभव के आधार पर मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि सादगी भरा जीवन ही सच्चा सुख देता है।

सादगी का अर्थ यह नहीं कि मनुष्य प्रगति न करे या सुविधाओं से दूर रहे। सादगी का अर्थ है—अनावश्यक इच्छाओं से मुक्त रहना, दिखावे से दूर रहना और अपने जीवन को सरल, संतुलित और स्वाभाविक बनाकर जीना। सादगी मन की अवस्था है। यदि मन में संतोष है, तो थोड़े साधनों में भी आनंद मिल जाता है और यदि मन में लालसा है, तो असीम संपत्ति भी कम लगती है।

हमारे समय में जीवन इतना जटिल नहीं था। कपड़े सीमित थे, साधन सीमित थे, पर मन में ईर्ष्या और तुलना की आग कम थी। जो मिला, उसमें संतोष था। त्योहारों पर नए कपड़े मिल जाएँ, तो वही सबसे बड़ा उपहार होता था। आज अलमारी भरी रहती है, फिर भी मन खाली–सा लगता है।

मुझे याद है, गर्मियों की रातों में हम सब आँगन में चारपाई डालकर सोते थे। आसमान में चमकते तारों को देखते–देखते दादी कहानियाँ सुनाती थीं। हवा का हल्का झोंका ही पंखे का काम करता था। न ए.सी. था, न कूलर पर नींद गहरी और मन शांत था।

रसोई में सादा भोजन बनता था–दाल, रोटी, सब्जी और कभी–कभी खीर। वही भोजन अमृत के समान लगता था। आज तरह–तरह के व्यंजन हैं, पर स्वाद में वह अपनापन नहीं बल्कि एक औपचारिकता झलकती है।

हमारे घर में फर्नीचर भी कम था। एक संदूक, कुछ चारपाइयाँ, एक मेज बस, पर घर में प्रेम की कमी नहीं थी। रिश्तों में मिठास थी, आपसी सहयोग था। कोई भी दुख आता, तो पूरा परिवार साथ खड़ा होता। सादगी हमें एक–दूसरे से जोड़कर रखती थी।

आज का समय भौतिकता का समय है। हर व्यक्ति दूसरों से आगे निकलने की होड़ में लगा है। घर बड़ा हो, गाड़ी नई हो, मोबाइल महँगा हो–इन बातों में ही मान–सम्मान खोजा जाने लगा है। सोशल मीडिया ने इस प्रवृत्ति को और बढ़ा दिया है। लोग अपने जीवन का वह हिस्सा दिखाते हैं जो चमकदार है और उसे देखकर दूसरों के मन में तुलना और असंतोष जन्म लेता है।

पर क्या सचमुच इन चीजों से सुख मिलता है? कुछ समय के लिए शायद हाँ, पर वह सुख क्षणिक होता है। नई वस्तु की चमक कुछ दिनों में फीकी पड़ जाती है और फिर मन किसी नई चाह में भटकने लगता है। इस प्रकार मनुष्य एक ऐसी दौड़ में शामिल हो जाता है, जिसका कोई ठिकाना नहीं।

सादगी हमें इस दौड़ से बाहर निकालती है। वह सिखाती है कि जितनी आवश्यकता हो, उतना ही पर्याप्त है। अधिक पाने के लालच से अधिक खोने का भय जन्म लेता है। सादगी में भय नहीं होता, क्योंकि अपेक्षाएँ सीमित होती हैं।

सच्चा सुख बाहरी वस्तुओं में नहीं, मन की शांति में है और मन की शांति सादगी से आती है। जब जीवन में अनावश्यक बोझ कम होता है, तो मन हल्का रहता है। कम इच्छाएँ हों, तो निराशाएँ कम होती हैं।

मैंने अपने जीवन में देखा है कि जो लोग सरल जीवन जीते हैं, वे अधिक प्रसन्न रहते हैं। वे छोटी–छोटी बातों में आनंद खोज लेते हैं–सुबह की धूप, पक्षियों की चहचहाहट, बच्चों की हँसी, परिवार के साथ बिताया समय। उन्हें हर खुशी के लिए बड़ी तैयारी की आवश्यकता नहीं होती।

इसके विपरीत, जो लोग अत्यधिक भौतिक सुविधाओं में उलझे रहते हैं, वे अक्सर तनाव और चिंता से घिरे रहते हैं। उनकी अपेक्षाएँ इतनी अधिक होती हैं कि संतोष का स्थान ही नहीं बचता।

सादा जीवन केवल मानसिक ही नहीं, शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी है। पहले लोग सादा भोजन करते थे, नियमित श्रम करते थे और समय पर सोते–जागते थे। इसलिए बीमारियाँ कम थीं। आज सुविधाओं के कारण शारीरिक श्रम कम हो गया है और खान–पान में कृत्रिमता बढ़ गई है। परिणामस्वरूप अनेक रोग बढ़ते जा रहे हैं।

सादगी हमें प्रकृति के निकट ले जाती है। सरल भोजन, नियमित दिनचर्या और संयमित जीवन–ये सब स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं। यदि शरीर स्वस्थ है और मन शांत है, तो वही सच्चा सुख है।

सादगी केवल वस्त्र या भोजन तक सीमित नहीं है; वह व्यवहार में भी होनी चाहिए। आज संबंधों में भी औपचारिकता बढ़ गई है। पहले पड़ोसी भी परिवार का हिस्सा होते थे। किसी के घर कोई समस्या हो, तो पूरा मोहल्ला साथ देता था। आज लोग अपने–अपने घरों में सीमित हो गए हैं।

सरल व्यवहार, मधुर वाणी और सच्चाई–ये सादगी के ही रूप हैं। यदि हम अपने व्यवहार को सरल रखें, दिखावा न करें और दूसरों के प्रति सहानुभूति रखें, तो संबंधों में मधुरता बनी रहती है।

आज मनुष्य बाहर की दुनिया में इतना उलझा है कि उसे अपने भीतर देखने का समय ही नहीं मिलता। सादगी हमें ठहरना सिखाती है। वह बताती है कि जीवन केवल कमाने और खर्च करने का नाम नहीं है; वह अनुभव करने, समझने और बाँटने का नाम भी है।

**नई पीढ़ी के लिए संदेश**

मैं नई पीढ़ी को दोष नहीं देता। समय बदल गया है, आवश्यकताएँ बदल गई हैं। परंतु मैं उन्हें केवल इतना कहना चाहता हूँ कि प्रगति कीजिए, आगे बढ़िए, पर सादगी को मत छोड़िए। अपने जीवन में संतुलन बनाए रखिए।

महँगे वस्त्र पहनिए, पर विनम्रता बनाए रखिए। आधुनिक साधन अपनाइए, पर अपने संस्कारों को मत भूलिए। सफलता प्राप्त कीजिए, पर संतोष को भी स्थान दीजिए।

कभी–कभी अपने व्यस्त जीवन से समय निकालकर परिवार के साथ बैठिए। बिना किसी विशेष कारण के हँसिए, बातें कीजिए। सरल क्षण ही जीवन के सबसे सुंदर क्षण होते हैं।

आज जब जीवन की संध्या में बैठा हूँ, तो यह अनुभव स्पष्ट है कि जिन दिनों में साधन कम थे, वे दिन अधिक सुखद थे। उस समय चिंता कम थी, अपेक्षाएँ कम थीं और संतोष अधिक था।

सादगी भरा जीवन ही सच्चा सुख देता है, क्योंकि उसमें संतोष है, शांति है और आत्मीयता है। हमें चाहिए कि हम आधुनिकता को स्वीकार करें, पर सादगी की जड़ों से जुड़े रहें। जीवन को इतना जटिल न बनाएँ कि उसमें आनंद के लिए स्थान ही न बचे।

अंत में मुझे यह कहना है कि सादगी कोई कमजोरी नहीं, बल्कि सबसे बड़ी शक्ति है। वही हमें स्थिर रखती है, संतुलित रखती है और सच्चे सुख का मार्ग दिखाती है।

# जादुई क्रेडिट कार्ड

**सृष्टि सिंह**
वरिष्ठ लेखापरीक्षक

रवि एक छोटे शहर का लड़का था। मेहनती था, लेकिन उसके पास हमेशा पैसे कम रहते। उसे नए गेम्स, महँगे–महँगे कपड़े, जूते, किताबें, बाइक्स और दोस्तों के साथ मजेदार चीजें करने का शौक था।

एक दिन उसके पास बैंक से चमचमाता क्रेडिट कार्ड आया। कार्ड पर लिखा था–जादुई कार्डः आपकी इच्छाओं को साकार करने की सुविधा।"

बैंक अधिकारी मुस्कुराए और बोले,

"रवि, यह कार्ड तुम्हें बहुत सुविधा देगा। लेकिन याद रखना–जिम्मेदारी न रखी तो यह तुम्हारे लिए बोझ बन जाएगा।"

रवि उत्साहित था। उसने कार्ड हाथ में उठाया और महसूस किया जैसे उसके हाथ में सच में जादू की छड़ी आ गई हो।

रवि ने पहली बार कार्ड का इस्तेमाल किया। उसने अपने पसंदीदा वीडियो गेम, नए जूते, महंगे–मंहगे कई सारे ब्रांडेड कपडे, एक महंगी बाइक और सारे दोस्तों के लिए अच्छे–अच्छे तोहफे खरीदे।

"देखो दोस्तों, मैंने ये सब कार्ड से खरीदा! रवि बड़े उत्साह के साथ गर्व से बोला।

उसके दोस्तों की आँखें फटी की फटी रह गईं।

लेकिन अगले दिन जब रवि बैंक ऐप खोलकर अपना बिल देखने गया, तो उसकी आँखें फैल गईं।

"इतना पैसा?" वह चौंक गया।

और तभी अचानक कार्ड स्वाइप नहीं हुआ–जैसे जादू अचानक खत्म हो गया हो।

रवि ने घबराते हुए बैंक में फोन किया। अधिकारी ने हँसते हुए कहा,

"कार्ड काम कर रहा है, बस तुमने लिमिट पार कर दी थी। और हाँ बिल नहीं चुकाने पर ब्याज भी बहुत ज्यादा लगेगा। याद रखो, सीमाओं के बिना जादू भी मुश्किल हो जाता है।"

रवि अब बहुत ज्यादा घबरा गया था कि इतना सारा ऋण अब कैसे चुकाऊँगा।

ऋण चुकाने के लिए अब दिन प्रतिदिन उसके पास बैंक से फोन आने लगे। रवि उन पैसों को चुका पाने में अक्षम था, जिस कारण ब्याज लग कर वो पैसा दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था।

रवि का आत्मविश्वास अब टूटने लगा था उसे लगने लगा था कि अब मैं ये ऋण कभी नही चुका पाऊँगा "फिर फोन की घंटी बजी और दूसरी तरफ से आवाज आई कि सर अगर आपने बिल नहीं भरा तो आपकी मुश्किलें और बढ़ जाएँगी" रवि को एक अंतिम चेतावनी दी और फोन काट दिया जिससे रवि का तनाव और भी ज्यादा बढ़ गया।

रवि को समझ आया कि खुशी की इस लहर के पीछे जिम्मेदारी नहीं थी।

"मैंने सिर्फ खुशी के लिए खर्च किया और अब परेशानी बढ़ गई और मै बुरी तरीके से फँस चुका हूँ" रवि ने सोचा कि अब मैं अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेता हूँ जिससे इस कर्ज से भी मुझे छुटकारा मिल जायेगा और रोज रोज के टॉर्चर से भी बच जाऊँगा।

एक और बार फोन की घंटी बजी और रवि चौंक गया दूसरी तरफ से आवाज आयी "बेटा, कैसा है तू ?" अब ये फोन रवि के पिताजी का था।

रवि—ठीक हूँ पापा। उसकी आवाज में एक अजीब सी टूटन थी। पापा ने महसूस किया कि कुछ तो गलत है, पर रवि के स्वर में ऐसी झिझक थी मानो वह अपने डर और निराशा को छिपाने की कोशिश कर रहा हो।

पापा— बेटा क्या हुआ? कोई बात है क्या? तू मुझसे कुछ छुपा रहा है।

रवि को लगा जैसे उसकी दुखती रग पर किसी ने हाथ रख दिया हो और वो बोलते बोलते रो पड़ा "पापा, सच कहूँ तो मैं ठीक नहीं हूँ। वो... मैंने कुछ महीने पहले एक क्रेडिट कार्ड लिया था। शुरुआत में सोचा था कि बस थोड़ी मदद के लिए इस्तेमाल करूँगा – कुछ जरूरी खर्चे थे, नौकरी नई थी, पैसे कम पड़ रहे थे। फिर सोचा कि सैलरी आते ही चुका दूँगा..."

वह थोड़ी देर रुका, फिर धीमे स्वर में बोला,

"लेकिन पापा, किस्तें बढ़ती गईं, खर्चे भी। बैंक से कॉल आने लगे। शुरू में तो सब ठीक लगा, पर अब ब्याज इतना बढ़ गया है कि जितना चुकाता हूँ, उतना ही बाकी रह जाता है। आज फिर फोन आया था... उन्होंने कहा कि अगर बिल नहीं भरा तो मामला आगे बढ़ जाएगा।"

उसकी आँखों में नमी थी।

"मुझे लगा था मैं संभाल लूँगा सब, लेकिन अब डर लगने लगा है कि कहीं ये गलती मेरी जिंदगी पर भारी न पड़ जाए..."

पिता कुछ देर चुप रहे। फिर बोले—

"बेटा, गलती मान लेना ही पहला कदम है उसे सुधारने का। अब डरने की नहीं, संभलने की जरूरत है। मिलकर रास्ता निकालेंगे।"

पिता ने समझाया,—"रवि, क्रेडिट कार्ड ताकतवर है, लेकिन जिम्मेदारी न रखने पर यह बोझ बन सकता है। संतुलन ही असली शक्ति है।"

रवि दुखी था, लेकिन उसने सीख भी पाई– "ऋण उतना ही लेना चाहिए, जितनी आवश्यकता हो; क्योंकि जरूरत से ज्यादा लिया गया ऋण बोझ बन जाता है।"

रवि ने तय किया कि अब वह कार्ड का इस्तेमाल केवल जरूरी चीजों के लिए करेगा।

हर खर्च का हिसाब रखा और धीरे–धीरे अपने बढ़ते बिल चुकाए।

इस बीच, एक दिन वह अपने दोस्तों के साथ खेलते–खेलते अचानक कार्ड भूल गया–और उसे डर लगा कि क्या पैसे ट्रांसफर होंगे या नहीं।

लेकिन उसने योजना बनाई और संभलकर खर्च करना सीखा।

रवि अब समझ चुका था–जादू केवल संतुलन और जिम्मेदारी में है, लालच में नहीं।

समय के साथ रवि ने अपने खर्चों को पूरी तरह संभाल लिया। उसने दोस्तों और परिवार को भी सिखाया कि क्रेडिट कार्ड का सही इस्तेमाल कैसे करें।

रवि मुस्कुराते हुए सोचता था,

"क्रेडिट कार्ड दोस्त है, अगर इसे समझदारी से इस्तेमाल किया जाए और दुश्मन है, अगर लालच और जल्दबाजी में इस्तेमाल किया जाए।"

रवि की खुशी अब स्थायी थी। उसने महसूस किया–संतोष और जिम्मेदारी में ही असली जादू है। संतोष का अर्थ है अपने वर्तमान जीवन और परिस्थितियों में खुशी और शांति महसूस करना। यह मनुष्य को अंधाधुंध इच्छाओं और लालच से दूर रखता है। जब व्यक्ति संतोषी होता है, तो वह अपने पास मौजूद संसाधनों और अवसरों की कदर करता है। संतोष से मानसिक शांति और आत्मविश्वास बढ़ता है और व्यक्ति अपनी छोटी–छोटी खुशियों में संतुष्टि पाता है। यह केवल भौतिक वस्तुओं तक सीमित नहीं है, बल्कि संबंधों, स्वास्थ्य और जीवन के अनुभवों में भी संतोष होना आवश्यक है।

जिम्मेदारी का अर्थ है अपने कर्तव्यों और दायित्वों को ईमानदारी और निष्ठा के साथ निभाना। जिम्मेदारी लेने वाला व्यक्ति अपने कार्यों के परिणामों को समझता है और उनका सही ढंग से सामना करता है। जिम्मेदारी सिर्फ अपने व्यक्तिगत जीवन तक सीमित नहीं है, बल्कि परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति भी इसका पालन आवश्यक है। जब लोग जिम्मेदारी पूर्वक कार्य करते हैं, तो समाज में विश्वास और सहयोग की भावना बढ़ती है।

संतोष और जिम्मेदारी आपस में जुड़े हुए हैं। जब कोई व्यक्ति संतोषी होता है, तो वह अनावश्यक लालच से बचता है और जिम्मेदारीपूर्ण जीवन जीने में सक्षम होता है। वहीं, जिम्मेदारी का पालन करने वाला व्यक्ति अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रहता है और अपने जीवन में संतोष महसूस कर सकता है। दोनों गुण मिलकर व्यक्ति को मानसिक स्थिरता, सामाजिक सम्मान और जीवन में सफलता प्रदान करते हैं और हमें हमारे वर्तमान में संतुष्ट रहने और अपने जीवन को सच्चे अर्थों में मूल्यवान बनाने का अवसर देती है। इसलिए संतोष और जिम्मेदारी को जीवन में अपनाना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

# बहार की आई बहार

**गौरव सिंह कुशवाह**
लेखापरीक्षक

फ़िज़ा में फिर से खिल उठे
हर एक सूखे सपने के फूल,
हरी–भरी राहों पर चलती
नयी–नयी उमंगों की धूल।

पेड़ों ने पहनी हरी चादर,
फूलों ने सजाई रंगत,
गुंजन–सी मधुर हवा में
हर दिल में उठी उमंग।

चिड़ियों की चहक सुनकर
आसमान भी मुस्काता है,
बंजर सी धरती पर अब
सपनों का सवेरा आता है।

नदियाँ भी हँसने लगीं,
बूँदें गुनगुनाने लगीं,
धरती की हर प्यास अब
फूलों से ही बुझाने लगीं।

बहार का ये सजीला गीत
हर दिल में गूँजता रहे,
प्रकृति के इस नए श्रृंगार से
हम भी नया जीवन गढ़ें।

# चाय के कप पर संवादः जेन जी और भारतीय प्रशासन

**तनुज कुमार**
सहायक लेखापरीक्षा अधिकारी

पात्रः

शर्मा जी – वरिष्ठ अधिकारी, 30+ वर्षों का अनुभव

अमन – नई पीढ़ी–जेन ज़ी का युवा कर्मचारी

(सुबह 10 बजे, सरकारी कार्यालय। फाइलों का ढेर, कंप्यूटर की हल्की आवाज, चाय की खुशबू।)

शर्मा जीः अमन जी, जरा ये फाइल तो देख लीजिए। तीन दिन से आपकी टेबल पर पड़ी है।

अमन (मुस्कुराते हुए): सर, फाइल देख ली है। मैंने उसे ई–ऑफिस पर फॉरवर्ड भी कर दिया है... डिजिटल तरीके से।

शर्मा जी (हैरानी से): फॉरवर्ड कर दिया? बिना फाइल उठाए? हमारे जमाने में तो फाइल तभी आगे बढ़ती थी जब उसे हाथ से पकड़ा जाए।

अमनः सर, हमारे ज़माने में फाइल तभी आगे बढ़ती है जब उसे क्लिक किया जाए। अब फाइल को हाथ नहीं... वाई फाई चाहिए।

**शर्मा जीः** वाई फाई

**अमनः** जी सर, नहीं तो फाइल वहीं बैठ जाती है, जैसे कर्मचारी बिना चाय के ☕

(दोनों मुस्कुराते हैं ☕)

शर्मा जीः अमन, एक बात बताओ... ये फाइल तुमने बिना पन्ना नंबर लगाए कैसे भेज दी?

अमन (मुस्कुराते हुए): सर, अब फाइल डिजिटल है... इसमें पन्ना नंबर नहीं, लॉग हिस्ट्री होती है।

शर्मा जीः हम्म्म... हमारे जमाने में तो फाइल अगर गिर जाए, तो आधा दिन पन्ने मिलाने में चला जाता था ☕

अमनः और हमारे जमाने में सर, फाइल गिरती नहीं... क्रैश होती है ☕

शर्मा जीः लेकिन इसमें नोटशीट बहुत छोटी है। हमारे जमाने में तो नोटशीट आधी फाइल भर देती थी।

अमन (मुस्कुराते हुए): सर, हमने सोचा काम छोटा होगा तो समझ भी जल्दी आएगा।

शर्मा जीः हम्म... मगर कभी–कभी ज्यादा लिखना इसलिए जरूरी होता है ताकि कोई ये न कह सके कि "सोचा नहीं गया।"

अमनः बिलकुल सही है सर। हम लोग बस ये मानते हैं कि अगर सोच साफ हो, तो शब्द कम भी चल जाते हैं।

शर्मा जी (हल्की मुस्कान के साथ): लगता है नई पीढ़ी ने शब्दों की भी कटौती कर दी है।

अमनः सर, बजट कम है न... सब जगह ऑप्टीमाईजेशन करना पड़ता है ☕

शर्मा जीः देखो अमन, सरकारी काम में जल्दबाजी नहीं चलती। हर नियम की एक वजह होती है। सरकारी सेवा नियमों पर चलती है। यहाँ प्रयोग की गुंजाइश सीमित होती है। हर काम नियम, प्रक्रिया और पूर्व उदाहरण देखकर करना पड़ता है।

अमनः सर, हम नियमों के खिलाफ नहीं हैं। हम बस ये पूछते हैं कि क्या हर नियम आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कल था? आप "पूर्व उदाहरण" फाइल में ढूँढते हैं, और हम "सर्च बार" में।

शर्मा जीः नियम अनुभव से बनते हैं। हर नियम के पीछे कोई न कोई गलती छुपी होती है।

अमनः और सर, हर बदलाव के पीछे कोई न कोई सवाल। अगर सवाल न पूछें, तो सुधार भी नहीं होता।

शर्मा जी (कुछ सोचते हुए): शायद यही अंतर है। हमने गलतियों से सीखा...और तुम लोग सुधार से सीखना चाहते हो। सवाल पूछना गलत नहीं है... बस सवाल के साथ धैर्य भी होना चाहिए।

अमनः सीख रहे हैं सर। वैसे धैर्य बढ़ाने के लिए ही शायद ये फाइल मूवमेंट इतना स्लो रखा गया है ☕।

शर्मा जीः आप लोगों को जल्दी बहुत होती है। हर चीज तुरंत चाहिए– अप्रूवल, पोस्टिंग, प्रमोशन

अमन (थोड़ा हँसते हुए): सर, जल्दी नहीं होती... बस हमने बफरिंग में बड़ा होना नहीं सीखा ☕

शर्मा जी (गंभीर होकर): लेकिन अनुभव भी कोई चीज होती है। तुम लोग सोचते हो अनुभव पुराना हो गया है। गलती की कीमत सरकार में बहुत भारी होती है।

अमनः नहीं सर, हम सोचते हैं अनुभव एक खजाना है। बस जरूरत है उसे सही तरीके से इस्तेमाल करने की। इसीलिए तो हमें आपकी जरूरत है ताकि हम तेज चलें, लेकिन गलत दिशा में नहीं।

शर्मा जीः तुम लोगों को लगता है हम तकनीक से डरते हैं।

अमनः नहीं सर, डर नहीं... बस आप लोग तकनीक को वैसे देखते हैं जैसे हम सरकारी नोटिफिकेशन देखते हैं—पूरी पढ़ेंगे, फिर भरोसा करेंगे ☕

शर्मा जी (हँसते हुए): और तुम लोग बिना पूरा पढ़े "आई एग्री" दबा देते हो।

अमनः ☕☕☕

शर्मा जीः हमने अपनी नौकरी में देर तक ऑफिस में रहना, ट्रांसफर सहना, सब किया है।

अमनः और सर, हम काम करना चाहते हैं... लेकिन साथ में ये भी चाहते हैं कि काम के अलावा जिंदगी भी रहे। दोनों गलत नहीं हैं, बस जमाना अलग है।

शर्मा जीः आप लोगों ने वर्क लाइफ बैलेंस नाम की भी कोई चीज बना ली है और वह बहुत प्रिय है।

अमनः सर, काम से नहीं भागते, बस चाहते हैं कि काम ही जीवन न बन जाए। सर, मानसिक संतुलन ठीक रहेगा तभी काम भी ठीक होगा। थके हुए दिमाग से अच्छे निर्णय नहीं निकलते।

शर्मा जीः तुम लोग समय से ऑफिस आते हो, समय से चले भी जाते हो। कभी—कभी लगता है काम कम कर रहे हो।

अमनः सर, हम समय नहीं, परिणाम गिनते हैं। अगर काम पूरा हो गया है, तो देर तक रुकने का मतलब नहीं।

शर्मा जीः हमारे लिए ऑफिस में रहना ही काम का प्रमाण था।

अमनः और हमारे लिए काम का परिणाम ही प्रमाण है। दोनों की सोच गलत नहीं है सर, बस अलग है।

अमनः सर, एक बात और। हम जब सुझाव देते हैं, तो कई बार लगता है कि उसे चुनौती समझ लिया जाता है।

शर्मा जीः क्योंकि हमारे समय में सवाल अक्सर असहमति का संकेत माने जाते थे। हमने ऐसी व्यवस्था में काम किया है जहाँ नियमों पर सवाल कम और पालन ज्यादा किया जाता था। इसलिए जब तुम सुझाव देते हो ऐसा मान लिया जाता है कि तुम व्यवस्था को चुनौती दे रहे हो, जबकि तुम उसको बेहतर तथा भविष्य के सापेक्ष बनाने की कोशिश कर रहे होते हो

अमनः सर, एक बात पूछूँ?

शर्मा जीः पूछिए।

अमनः जब पहले सब कुछ मैन्युअल था, तब इतना काम कैसे संभल जाता था?

शर्मा जीः संभलता नहीं था, संभाला जाता था। घंटों बैठकर, नियम पढ़कर, और कभी—कभी अनुमान लगाकर।

अमनः आज अनुमान की जगह डेटा है।

शर्मा जीः और डेटा की व्याख्या के लिए अनुभव।

शर्मा जीः किन्तु आप लोगों को परिणाम भी तुरंत चाहिए।

अमनः सर, नागरिक भी तो यही चाहता है। उसके लिए "प्रक्रिया" नहीं, "परिणाम" मायने रखता है।

शर्मा जीः पर अगर परिणाम गलत हो गया, तो वही नागरिक सबसे पहले सवाल पूछेगा।

अमनः इसीलिए तो हम कहते हैं तेजी और सावधानी दोनों साथ चलें।

शर्मा जीः हमारे समय में प्रक्रिया थी – पहले नियम पढ़ो, समझो, सीखो और पालन करो

अमनः और हमारे समय में– पहले सीखो, फिर पूछो, और अगर बेहतर तरीका दिखे तो सुझाव दो।

शर्मा जी (मुस्कुराते हुए): इसीलिए आप लोग जल्दी बोलते हैं और हम लोग सोचकर ☕

शर्मा जी (गंभीर लेकिन संतुष्ट स्वर में): शायद पीढ़ियों का अंतर समस्या नहीं है। समस्या तब होती है जब हम एक–दूसरे को सुनते नहीं।

अमनः सही कहा सर। अनुभव दिशा देता है, और ऊर्जा गति।

अमनः सर, एक बात कहूँ?

शर्मा जीः जरूर।

अमनः अगर आपकी पीढ़ी हमें प्रक्रिया सिखा दे, और हमारी पीढ़ी आपको प्रणाली सरल करना सिखा दे, तो नागरिक को इंतजार नहीं करना पड़ेगा।

शर्मा जी (मुस्कुराते हुए)ः और प्रशासन को समझौता नहीं करना पड़ेगा।

शर्मा जीः मतलब अब मेंटरशिप एक तरफा नहीं रह गई।

अमनः जी सर, अब लर्निंग टू–वे हो गई है ☕

शर्मा जी (मुस्कुराते हुए)ः ठीक है अमन जी, कल आप मुझे डैशबोर्ड समझाइएगा।

अमन (हँसते हुए)ः और आप मुझे बताएँगे कि किस फाइल में कौन–सा "छुपा नियम" रहता है

शर्मा जीः तो तय रहा–मैं तुम्हें नियम सिखाऊँगा...

अमनः और मैं आपको ऐप्स ☕

शर्मा जीः मतलब भविष्य सुरक्षित हाथों में है।

अमनः और पास्ट सुरक्षित फाइलों में ☕

✍ **निष्कर्ष**

यह संवाद केवल दो व्यक्तियों की बातचीत नहीं, बल्कि भारतीय प्रशासन की दो पीढ़ियों का संवाद है। जहाँ एक ओर अनुभव है, वहीं दूसरी ओर ऊर्जा।

जब दोनों टकराते नहीं, बल्कि संवाद करते हैं– अपने विचारों का बोझ दूसरे के कंधो पर डालते नहीं बल्कि एक दूसरे के विचारों के समागम से त्वरित, सटीक तथा अधिक प्रभावी निष्कर्ष की ओर अग्रसर होते हैं। तभी एक आधुनिक और नागरिक–केंद्रित प्रशासन संभव होता है।

# अर्थहीन ब्रह्माण्डः भाग एक - शून्य में अभिनय

**अभिषेक रावत**
लेखापरीक्षक

सोचिये आप एक पार्टी में हैं। चारों तरफ लोग हँस रहे हैं, नाच रहे हैं, कोई सोशल मीडिया पर अपनी पूरी जिंदगी पोस्ट कर रहा है, तो वहीं कुछ बुद्धिजीवी थोड़े परेशान लग रहे हैं, शायद वे शेयर बाजार व इन्वेस्टमेंट की गुणा भाग में लगे हैं – लोग अपने घर बना रहे हैं, रिश्ते, बच्चे, करियर वगैरह बनाने में जुटे हैं, मानो वे किसी महान ब्रह्मांडीय योजना का पालन कर रहे हों, मानो उन्हें सच में पता हो कि वे यह सब क्यूँ कर रहे हैं। फिर एकाएक, शोरगुल के बीच आपको वह पल महसूस होता है। आपके दिमाग में संगीत थम सा जाता है। आप चारों ओर देखते हैं और सोचते हैंः "...रुको। क्यों? आखिर हम यह सब क्यों कर रहे हैं? इस सबका अर्थ क्या है? इस सारी उठा पटक का असली मकसद क्या है..?"

सभी सामाजिक व धार्मिक मान्यताओं को कुछ क्षण एक तरफ रख, अगर आप पूरी ईमानदारी से सोचें, तो ऐसा जान पड़ता है कि ब्रह्मांड को कोई परवाह नहीं है। कोई दर्शक नहीं है, कोई निर्णायक नहीं है, कोई अंतिम बॉस नहीं है। अंत में ब्रह्मांड आपको कोई शाबाशी भी नहीं देने वाला।

यह अहसास कि हमारे जीवन का कोई अंतिम अर्थ नहीं है, कोई वास्तविक उद्देश्य नहीं है, और हम किसी भी पल अस्तित्व से मिट सकते हैं – भय उत्पन्न कर सकता है या हमें निराशा में डुबो सकता है। अधिकांश लोग, जब अपने अस्तित्व की वास्तविक ब्रह्मांडीय शून्यता और अर्थहीनता का सामना करते हैं, तो या तो वे इसे अनदेखा कर देते हैं और आँखें मूँदे तेजी से जीवन की दौड़ में लगे रहते हैं (अधिक धन, अधिक प्रतिष्ठा, अधिक वस्तुएँ), या वे किसी बने बनाए अर्थ को स्वीकार कर लेते हैं, जैसे कि धर्म, कोई भव्य राजनीतिक आदर्शवाद, मानवता, ज्योतिष आदि। लेकिन ये दोनों ही दृष्टिकोण बेईमानी भरे हैं और तार्किक कमजोरी दर्शाते हैं, क्योंकि ये एक अर्थहीन प्रतीत होने वाले ब्रह्मांड में अपने जीवन को झूठे अर्थ देकर स्वयं को मूर्ख बनाने पर आधारित हैं। तो वास्तव में एक ईमानदार दृष्टिकोण क्या होगा..?

जीवन में सच्चाई का सामना करने से ही ईमानदारी का मार्ग प्रशस्त होता है – सच्चाई यह है कि जीवन का कोई पूर्ण उद्देश्य या अर्थ नहीं है, कि हम किस रंग के वस्त्र पहनते हैं इससे ग्रहों को कोई फर्क नहीं पड़ता, कि अनंत ब्रह्मांड की विशाल योजना में हमारे कार्यों का कोई महत्व नहीं है। लेकिन यह सब जानकर हमें हताश हो कर जीवन की निरर्थकता से मुंह नहीं मोड़ना चाहिए, क्योंकि इस समस्या का एकमात्र समाधान तभी मिल पाता है जब हम इसे पूरी तरह स्वीकार कर लेते हैं। जब हम अपने अस्तित्व की निरर्थकता को सचमुच स्वीकार कर लेते हैं, तो हमारे अंतर्मन में कुछ अप्रत्याशित घटित होता है जो हमें मुक्त कर देता है और हमारे सारे भय दूर हो जाते हैं, हम समझ पाते हैं कि कुछ भी मायने नहीं रखता। हम जोखिम उठाना शुरू कर देते हैं, क्योंकि अगर कुछ भी

मायने नहीं रखता, तो इसका मतलब है कि जोखिम का खुद कोई वास्तविक अस्तित्व ही नहीं है। तो अपने अस्तित्व की इस निरर्थकता को इस कदर स्वीकार करने से आप कहाँ पहुँच सकते हैं..?

आप वह चीज शुरू कर सकते हो जिसे आप हमेशा से बनाना चाहते थे (कला, व्यवसाय, संगीत, कोई अजीबोगरीब प्रोजेक्ट), भले ही वह शायद बुरी तरह विफल हो जाए, क्योंकि विफलता भी कई अर्थहीन घटनाओं में बस एक और घटना है।

आप किसी को वो नाजुक, शर्मनाक, बेहद खूबसूरत सच्चाई बयां कर सकते हो जिसे आप उनसे छिपा रहे हो – प्यार, जलन, माफी, गुस्सा, ... क्योंकि अस्वीकृति उस अर्थ को नष्ट नहीं कर सकती जो कभी अस्तित्व में था ही नहीं।

आप बिना किसी योजना के कहीं से कहीं भी यात्रा कर सकते हो, मनमर्जी से शहर बदल सकते हो, जीवन के बेतुके निमंत्रण स्वीकार कर सकते हो, क्योंकि सबसे बुरा परिणाम (असुविधा, कंगाल होना, शर्मिंदगी) अब कोई आपदा नहीं है, बल्कि सिर्फ अनुभव है। आप सामाजिक तानों–बानों की परवाह किये बिना अपनी हर इच्छा पूरी कर सकते हो, क्योंकि आखिर में कुछ भी मायने नहीं रखता और यहाँ हर कोई और हर चीज अंततः धूल में मिल जाने के लिए ही बनी है।

आपको लग सकता है कि कोई इतना निडर व्यक्ति, जो ईश्वर या परलोक में विश्वास नहीं करता, जो समाज के बंधनों में ठोकर मार मुस्कुराता हुआ जाता है, वह शायद लोगों को नुकसान पहुँचा सकता है, सिर्फ मजे के लिए चीजें जला सकता है, क्योंकि उसे अपने कर्मों के परिणामों की कोई चिंता नहीं है। लेकिन बताइए, अगर आपको यह विश्वास है कि परलोक में आपके कर्मो का दंड मिलेगा, और यही चीज है जो आपको इस पागलपन को करने से रोकती है, तो क्या आप सचमुच एक अच्छे इंसान हैं..?

हालांकि, अपने अस्तित्व के अर्थहीन होने को स्वीकार करने से वास्तव में एक गंभीर समस्या उत्पन्न हो सकती है जिसका हमें खास ध्यान रखने की जरूरत है। हम सुन्न हो सकते हैं और जीवन के प्रति सारी भावनाएँ खो सकते हैं। हम सुख–दुख के प्रति उदासीन हो सकते हैं, और सोच सकते हैं कि अगर कुछ मायने ही नहीं रखता, तो फिर कुछ करने का क्या फायदा? जियें भी क्यों..?

हाल ही में मुझे चार्ल्स बुकोव्स्की का एक कथन मिला: "कुर्सियाँ खाली हैं, रंगमंच में अंधेरा है; फिर भी तुम अभिनय क्यों करते रहते हो?" अगर कोई देखने वाला ही नहीं है, आसमान में कोई न्याय करने वाला भी नहीं है, कोई तालियाँ भी नहीं जो देर तक बजती हों, तो फिर अभिनय करने का क्या फायदा..?

मुझसे पूछोगे तो मेरा जवाब होगा: "मुझे पता है कि कुर्सियाँ खाली हैं, लेकिन मेरे पास नाटक में अभिनय करने के अलावा कोई और बेहतर विकल्प नहीं है, और मैं जीवन की इस निरर्थकता के समक्ष अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन प्रस्तुत करूँगा।" यह आँखें मूँदना नहीं है। यह सच से इनकार नहीं है। यह झूठी उम्मीद भी नहीं है। यह शून्य में एक स्पष्ट चुनाव है: जब वैसे भी कुछ और नहीं है, तो क्यों न इसे पूरी तरह से, खुली आँखों से सब जानते हुए निभाया जाए।

कल्पना कीजिए कि यह ब्रह्मांड एक मंच के समान है, जिस पर धुंधली रौशनी पसरी हुई है, जहाँ न कोई निर्देशक है, न कोई निश्चित पटकथा और न ही कोई दर्शक। यह एक खाली, अंधियारा रंगमंच है। अनंत शून्यता के बावजूद, आपने इस नाटक में अभिनय करने का चुनाव किया है, क्योंकि यह मंच हमेशा के लिए नहीं है, यह केवल आपके जीवनकाल के लिए ही उपलब्ध है।

इसलिए आप यहाँ कला का सृजन करते हैं, अपने जुनून का पीछा करते हैं, दर्द महसूस करते हैं, हँसते हैं, नाचते हैं, लड़ते हैं, बदला लेते हैं, क्षमा करते हैं, जीवन की चुनौतियों का सामना करते हैं – लेकिन जीवन के हर क्षण में इस बात से पूरी तरह अवगत रहते हैं कि यह सब कुछ बनावटी है, यह जानते हुए कि यह सिर्फ एक नाटक है। क्योंकि "यह सिर्फ एक नाटक है" का ज्ञान ही आपको मुक्त करता है और आपको नाटक का स्वयं निर्देशक बनने की स्वतंत्रता भी प्रदान करता है।

जब आप इस गुप्त ज्ञान को जानते हुए कि नाटक महत्वहीन और तुच्छ है, स्वयं ही नाटक के निर्देशक बन जाते हैं, तो आप ऐसी बेजोड़ कला का निर्माण करते हैं जो शायद कुछ भी न बदले, लेकिन आप उस प्रक्रिया में आनंद लेते हैं, और जब वह कला पूर्ण हो जाती है, तो आप उसे देखते हैं और सोचते हैं: "वाह, क्या खूबसूरत धूल थी, चलो, अब अगला सीन।"

आप किसी से बेतहाशा प्यार करते हैं, यह जानते हुए भी कि वह हमेशा के लिए नहीं रहेगा, परिणामस्वरूप आपको दर्द का अहसास होता है– लेकिन क्या फर्क पड़ता है? आप दर्द और खुशी को तीव्रता से महसूस करते हैं, क्योंकि जब आप नाटक में लीन होते हैं, तो भावनाओं की तीव्रता वास्तविक प्रतीत होती है, लेकिन पृष्ठभूमि में हमेशा एक धीमी आवाज गूँजती रहती है: "यह भी खाली रंगमंच में एक नाटक है।"

कोई क्या सोचेगा..? इसकी कोई परवाह किये बिना आप खुद के किरदार में वो बदलाव कर पाते हैं जो आप करना चाहते हैं – क्योंकि एक निर्देशक के रूप में आप किसी के दवाब में नहीं हो कि पाँच मिनट पहले आप जिस तरह से सोचते व बोलते थे अब भी आप उसी तरह सोचें व बोलें।

आप निश्चिन्त होकर अपने कर्तव्य दृढ़ता से निभाते हैं, उपलब्धियों को प्राप्त करने के लिए कड़ी मेहनत करते हैं, इसलिए नहीं कि उनका कोई खास महत्व है, बल्कि बस इसलिए कि आप नाटक के निर्देशक के तौर पर ऐसा करना चाह रहे हैं।

और जब इस नाटक का अंतिम दृश्य आएगा और पर्दा गिरेगा, तो आप पीछे मुड़े बिना चले जाएँगे। कल्पना की हुई तालियों का स्वर फीका पड़ जाएगा। रंगमंच खाली हो जाएगा। आपने जो कुछ भी यहाँ इकट्ठा किया था (मित्र, परिवार, पैसा, उत्कृष्ट कृतियाँ, तारीफें, ज्ञान आदि...), सब कुछ वहीं मंच पर उस धुंधली रौशनी में उठती हुई धूल में विलुप्त हो जाएगा, फिर आप खाली पड़े उस रंगमंच को एक शांत प्रणाम करेंगे। और अंधेरा छा जाएगा। और यह दु:खद नहीं है; यह तो बस इस शो का तरीका है।

# कार्यालयीन गतिविधियां

1. कार्यालय में दिनांक 24–28 नवंबर 2025 के दौरान ऑडिट सप्ताह मनाया गया जिसमें निम्नलिखित कार्यक्रमों का आयोजन किया गयाः–

   **(क) स्वास्थ्य शिविर का आयोजन**– विशेषज्ञ चिकित्सकों द्वारा कार्यालय के अधिकारियों/कर्मचारियों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। इस दौरान हृदय रोग विशेषज्ञ द्वारा कार्डियोवैस्क्यूलर हेल्थ विषय पर एक व्याख्यान दिया गया, जिसमें कार्यालय के कई कार्मिकों द्वारा सीपीआर देने की विधि को सीखा गया। इसी दौरान नेत्र परीक्षण शिविर भी आयोजित किया गया।

   **(ख) खेल एवं मनोरंजक गतिविधियाँ**– पुरुष एवं महिला कार्मिकों के लिए फुटबॉल किक, रस्साकशी, जेवलिन थ्रो, महिला कार्मिकों के लिए रंगोली प्रतियोगिता, म्यूजिकल चेयर एवं डॉज बॉल का आयोजन किया गया। कार्मिकों के विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों के लिए चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन भी किया गया।

   **(ग) सांस्कृतिक कार्यक्रम**– लोक नृत्य, मिनी ऑर्केस्ट्रा, गीत गायन आदि आयोजित किए गए।

   **(घ)** ऑडिट भवन से चेतकपुरी चौराहे तक ऑडिट वॉकथॉन का आयोजन किया गया जिसमें महालेखाकार महोदय एवं अन्य अधिकारीगण तथा कर्मचारियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया।

   **(ङ)** जोखिम आधारित ऑडिट योजना के लिए कार्यशाला का आयोजन भी इस दौरान किया गया।

   **(च)** दिनांक 28.11.2025 को समापन समारोह का आयोजन किया गया जिसमें विभिन्न खेलों और प्रतियोगिताओं के विजेताओ को पुरस्कृत किया गया।

2. **26 जनवरी (गणतंत्र दिवस समारोह)**– 77 वे गणतंत्र दिवस के अवसर पर दिनांक 26.01.2026 को कार्यालय परिसर के खेल मैदान पर महालेखाकार महोदय के कर कमलों द्वारा झंडा वंदन किया गया। इस अवसर पर महालेखाकार महोदय ने कार्यालय में संपन्न हुई विभिन्न खेल प्रतियोगिताओं के विजेता खिलाडियों को पुरस्कार प्रदान कर उनका उत्साहवर्धन किया।

3. **सी.ए.जी. क्रिकेट टीम कैम्प चयन/कोचिंग का आयोजन**– इस कार्यालय द्वारा दिनांक 24.01.2026 से 01.02.2026 तक भारत के नियंत्रक–महालेखापरीक्षक (सीएजी) की क्रिकेट टीम के चयन हेतु एक सिलेक्शन कोचिंग कैंप का आयोजन किया गया जिसमें भारतीय लेखा एवं लेखापरीक्षा विभाग के पूरे देश में स्थित विभिन्न कार्यालयों के 43 अधिकारियों/कर्मचारियों द्वारा भाग लिया गया।

4. **विदाई सम्मान समारोह**– ऑडिट भवन के तीनों कार्यालयों में कार्यरत अधिकारियों/कर्मचारियों की सेवानिवृत्ति पर प्रत्येक माह के अंतिम कार्य दिवस को महालेखाकार महोदय की अध्यक्षता में विदाई सम्मान समारोह आयोजित किया जाता है। सितम्बर 2025 से जनवरी 2026 तक कल्याण शाखा द्वारा चार विदाई सम्मान समारोह आयोजित किए गए।

## वर्ष 2025-26 (सितम्बर 2025 से दिसम्बर 2025) तक कार्यालय से सेवानिवृत्त हुए कार्मिकों की सूची

| स.क्र. | नाम सर्व श्री/श्रीमती/सुश्री | स्थाई क्र. | पदनाम | सेवानिवृत्ति दिनांक |
|---|---|---|---|---|
| 1. | संजय कुमार जैन | 5735 | सहायक लेखापरीक्षा अधिकारी | 30.09.2025 |
| 2. | वृंदावन लुडेले | 5535 | सहायक लेखापरीक्षा अधिकारी | 31.10.2025 |
| 3. | राकेश कुमार सिंह | 6193 | वरिष्ठ लेखापरीक्षा अधिकारी | 30.11.2025 |
| 4. | माखन लाल धाकड़ | 10186 | वरिष्ठ लेखापरीक्षक | 30.11.2025 |
| 5. | मिथिलेश | 10438 | एम.टी.एस. | 30.11.2025 |
| 6. | कमल किशोर शर्मा | 10092 | वरिष्ठ लेखापरीक्षा अधिकारी | 31.12.2025 |

## वर्ष 2025-26 (सितम्बर 2025 से दिसम्बर 2025) तक कार्यालय में नियुक्त हुए कार्मिकों की सूची

| स.क्र. | नाम सर्व श्री/श्रीमती/सुश्री | स्थाई क्र. | पदनाम | नियुक्ति दिनांक |
|---|---|---|---|---|
| 1. | मान सिंह मीना | 11629 | लेखापरीक्षक | 29.10.2025 |
| 2. | गोपाल सिंह | 11630 | वरिष्ठ लेखापरीक्षक | 03.11.2025 |
| 3. | कमलेश कुमार मीना | 11632 | लेखापरीक्षक | 01.12.2025 |

## वर्ष 2025-26 (सितम्बर 2025 से दिसम्बर 2025) तक कार्यालय के कार्मिकों की असामायिक मृत्यु की सूची

| स.क्र. | नाम सर्व श्री/श्रीमती/सुश्री | स्थाई क्र. | पदनाम | मृत्यु दिनांक |
|---|---|---|---|---|
| 1. | विनोद कुमार अन्वेकर | 10292 | वरिष्ठ लेखापरीक्षा अधिकारी | 26.12.2025 |

# संयुक्त हिंदी पखवाड़ा 14-29 सितंबर 2025 की झलकियां

# संयुक्त हिंदी पखवाड़ा 14-29 सितंबर 2025
# की झलकियां

# संयुक्त हिंदी पखवाड़ा 14-29 सितंबर 2025 की झलकियां

# संयुक्त हिंदी पखवाड़ा 14-29 सितंबर 2025 की झलकियां

# कार्यालय में गणतंत्र दिवस समारोह